सरस्वती सिरीज़

मृत्युलोक की झाँकी



आना

सरस्वती-सिरीज़ नं० ३२

मृत्युलोक की झाँकी

T (Mrtyulok ki Jhanki

ठाकुरदत्त मिश्र

A) Thakur Dutt Mishra



प्रकाशक

इंडियन प्रेस लिमिटेड

प्रयाग

11949

सरस्वती-सिरीज़

ऐतिहासिक विचित्र कथा

मृत्युलोक की झाँकी

भारत के प्रसिद्ध स्थानों का व्यंग्यपूर्ण शैली में वर्णन।

ठाकुरदत्त मिश्र

अमरावती

कुछ वर्ष पहले की बात है। पूस के महीने में एक दिन देवराज इन्द्र अपनी बैठक में बैठे हुए वरुण से बातचीत कर रहे थे। जाड़े के दिनों में पृथ्वी पर वर्षा की इतनी आवश्यकता नहीं पड़ा करती, शायद इसी लिए या अन्य किसी कारण से जल के स्वामी वरुण कुछ दिनों के लिए अवकाश लेकर घर आये हुए थे। घर पर कोई काम-काज था नहीं, इसलिए मनोविनोद की इच्छा से वे इन्द्र के यहाँ प्रतिदिन ही आया करते और गप-शप तथा ताश या पाँसा आदि के खेल में घंटों व्यतीत किया करते। आज कोई खेल नहीं जम सका था, केवल गप-शप ही रहा था, और जल्दी-जल्दी पान-तम्बाक़ू के बीड़े पर बीड़े उड़ रहे थे। बात ही बात में इन्द्र ने कहा—देखो वरुण, सत्य, त्रेता तथा द्वापर आदि तीन युग बीत गये। चौथा कलि भी बराबर बीतता ही जा रहा है। प्राचीन काल के राजा अश्वमेध आदि यज्ञों के उपलक्ष्य में हम लोगों का आह्वान किया करते थे। इसलिए समय-समय पर मृत्युलोक देखने का अवसर हमें मिल जाया करता था। परन्तु आजकल वे सब यज्ञ आदि होते नहीं, इसलिए हमारा भी वहाँ का आना-जाना एक प्रकार से बन्द हो गया है। आज-कल तो लोग साधारण से साधारण कार्यों के उपलक्ष्य में "ॐ प्रजापतये", "ॐ इन्द्रादिदशदिक्पालेभ्यः" कहकर हमें स्मरण किया करते हैं अवश्य, परन्तु यह सोचकर कि कदाचित् वहाँ जाने पर तृप्तिकर आहार आदि न पा सकूँ, वहाँ जाने की इच्छा मुझे कभी नहीं हुई। तुम सदा पृथ्वी पर रहा करते हो। तुम्हें वहाँ रहकर भूमंडल में जितने भी देश और स्थान हैं, उन सबमें निवास करनेवाले एक-एक प्राणी की आवश्य-

कता के अनुसार जल-दान करना पड़ता है। इसलिए वहाँ का हाल तुम बहुत अच्छी तरह बतला सकते हो। जरा मुझे बतलाओ तो कि आजकल मृत्युलोक का राजा कौन है?

वरुण ने कहा--भूमण्डल में इँग्लैंड नामक एक द्वीप है। अँगरेज नाम की एक जाति वहाँ निवास किया करती है। आजकल उस जाति के ही लोग भारतवर्ष में आकर अपना अखण्ड साम्राज्य स्थापित किये हुए हैं। अँगरेजों के समान बुद्धिमान् और प्रतापी राजा मुझे कभी और कोई भी देखने में नहीं आया। पृथ्वी पर ऐसा स्थान नहीं है, जहाँ उनका राज्य न हो। स्वर्ग में अवश्य ऐसा कोई स्थान नहीं है, जिस पर अँगरेजों का अधिकार हो, परन्तु मैं तो जहाँ तक समझ पाता हूँ, स्वर्ग का राज्य भी कुछ दिनों में अँगरेजों के हाथ में आ जायगा।

वरुण की यह बात सुनकर इन्द्र हँस पड़े। उन्होंने कहा--वरुण, तुम तो बिलकुल बच्चों की-सी बातें कर रहे हो। भला रास्ता कहाँ ऐसा है, जिससे होकर अँगरेज लोग स्वर्ग में आ जायँगे?

वरुण ने उत्तर दिया--रास्ता न मालूम होने के ही कारण तो अँगरेज लोग आज तक स्वर्ग में आ नहीं पाये। परन्तु अँगरेजों में इतनी लगन होती है और वे इतने फितूरिये होते हैं कि मैं तो जहाँ तक समझता हूँ, कोई रास्ता निकाले बिना वे न रहेंगे। स्वर्ग के मार्ग का आविष्कार करने के विचार से उन्होंने आकाश पर उड़ने के लिए एक प्रकार का रथ तो बहुत पहले से ही तैयार कर रक्खा था परन्तु केवल इसी का निर्माण करके वे शान्त नहीं हो सके। आकाश पर चलनेवाले एक प्रकार के जहाज का भी निर्माण उन लोगों ने कर लिया है। उनकी आकांक्षा है कि यदि किसी प्रकार एक बार रास्ता मालूम हो जाय तो दल-बल लेकर स्वर्ग में आ पहुँचें।

इन्द्र ने कहा--वरुण, स्वर्ग पर अपना अधिकार जमाना कोई ऐसा-वैसा कार्य नहीं है। मान लो कि अँगरेजों को स्वर्ग में आने

के लिए उपयुक्त मार्ग खोज निकालने में सफलता भी मिल जाय और वे अपना दल-बल लेकर यहाँ पहुँच भी आवें, किन्तु भला मेरे वज्र से अपनी रक्षा करना उनके लिए किस प्रकार सम्भव होगा? क्या तुम नहीं जानते हो कि मेरे वज्र में कितनी अपार शक्ति है?

वरुण ने कहा—यह सब मैं जानता हूँ। परन्तु अँगरेज़ लोग भी साधारण बुद्धि के आदमी नहीं हैं। तुम्हारे वज्र को निष्फल करने के लिए उन्होंने एक उपाय निकाल लिया है। वज्र के कारण बहुत-सी बड़ी-बड़ी कोठियाँ तथा मन्दिर-मस्जिद और गिरजे आदि नष्ट हो जाया करते हैं। यह देखकर उन लोगों ने लोहे की एक प्रकार की सींक तैयार की है। वह सींक दोमंज़िली-तिमंज़िली कोठी के ऊपर की दीवार में लगा दी जाती है और उसके कारण कोठी पर वज्र का प्रभाव ज़रा भी नहीं पड़ सकता। ऐसी दशा में अँगरेज़ लोग यदि वह सींक व्योमयान में लगाकर उड़ें तो तुम्हारा वज्र उनका क्या बना-बिगाड़ सकेगा? अँगरेज़ों ने कैसी-कैसी ऊँचे दर्जे की मशीनें तैयार कर रक्खी हैं, यह सब तुम्हें अभी तक मालूम नहीं है, इसी लिए तुम गर्व करते हो और सोचते हो कि तुम्हारी अमरावती के समान सुन्दर और कोई स्थान नहीं है। परन्तु यदि तुम अँगरेज़ों की पुरानी राजधानी कलकत्ता को एक बार देखो तो फिर वहाँ से लौटकर स्वर्ग में आने की तुम भूलकर भी इच्छा न कर सकोगे। वहाँ की आर्मेनियन वेश्याओं के सौंदर्य के सामने तुम्हारी शची बिलकुल तुच्छ मालूम पड़ेंगी। आज तुम अपने इस नन्दन-कानन को बहुत ही रमणीक स्थान समझे बैठे हो और कितनी रात तक तुम इसमें बैठे रहते हो। परन्तु यदि तुम्हें एक बार भी कलकत्ता के ईडेन गार्डन में प्रवेश करने का अवसर मिले तो उसमें से निकलने की तुम्हें इच्छा ही न हो, तुम्हें स्वप्न में भी नन्दन-कानन की याद न आये। अँगरेज़ी राज्य में बिकनेवाली सेरी, शेम्पेन तथा ब्रांडी आदि के सामने स्वर्ग की सुधा को होठ से लगाने तक की इच्छा कभी कोई नहीं कर

सकता। अँगरेज लोग बिना तेल-बत्ती का दीपक जलाते हैं। क्विनाइन नामक ओषधि का प्रयोग करके वे तत्काल ज्वर शान्त कर देते हैं और अँगरेजों के द्वारा तैयार की गई इस क्विनाइन की शीशियों की बदौलत कितने मूर्ख डिस्पेंसरी खोलकर धन्वन्तरि बने बैठे हैं। केवल पाइप की ही सृष्टि करके उन्होंने मेरे सामने बहुत बड़ी विपत्ति खड़ी कर दी है।

इन्द्र ने पूछा—पाइप क्या चीज है ?

वरुण ने कहा—यह जल का कल है। इस कल की सहायता से प्रजा के घर-घर में जल पहुँचाया जाता है। लोग इच्छानुसार कहीं नल लगाकर जल प्राप्त करने लगते हैं। विद्युत् को अपने अधिकार में करके अँगरेज़ लोग इसके द्वारा एक स्थान से दूसरे स्थान पर संवाद भेजते हैं और सड़कों पर तथा कमरे-कमरे में रोशनी किया करते हैं। यदि यही हाल रहा तो देखना है कि कुछ दिनों में पवन-भाई की भी नौकरी रहती है या नहीं रहती।

वरुण के मुँह से अँगरेज-जाति तथा उनके द्वारा पहले-पहल स्थापित की गई भारत की राजधानी कलकत्ता की प्रशंसा सुनते-सुनते इन्द्र को भी कलकत्ता देखने की इच्छा हो आई और उन्होंने वरुण के सामने अपनी यह इच्छा प्रकट की। तब वरुण ने कहा कि मैं तुम्हें अँगरेजों के द्वारा तैयार किये गये वाष्प के रथ से कलकत्ता ले चलूँगा। इससे यात्रा करने में बड़ा आनन्द आयेगा। रास्ते में बड़े स्टेशनों पर उतरकर कुछ महत्त्वपूर्ण नगरों की सैर कर लेंगे, साथ ही भोजन-आदि करने की भी सुविधा हो जायगी।

वरुण की इस बात से इन्द्र बहुत प्रसन्न हुए। वाष्पीय रथ उनके लिए एक बिलकुल नई चीज थी। इससे उसके सम्बन्ध में विशेष-रूप से जानकारी प्राप्त करने की उन्हें इच्छा हुई। तब वरुण ने उन्हें बतलाया कि अँगरेजों ने एक ऐसा उत्तम रथ बना रक्खा है, जिसे खींचने के लिए घोड़ा या हाथी की आवश्यकता नहीं पड़ा करती। यह रथ

लोहे की पटरियों पर भाप के बल से चला करता है। इस वाष्पीय रथ को लोग रेलवे ट्रेन भी कहा करते हैं। ट्रेन में पहली, दूसरी, तीसरी तथा मध्यम श्रेणी की बहुत-सी गाड़ियाँ होती हैं और जो जितना पैसा खर्च कर सकता है, उसी हिसाब से उत्तम या निम्न श्रेणी में यात्रा भी कर सकता है। बोझा इस पर जितना अधिक हो, उतना ही यह खींच सकती है।

वाष्पीय रथ या रेलवे-ट्रेन का वर्णन सुनकर देवराज इन्द्र मुग्ध हो गये। उन्होंने कहा—आहा, इतना अद्भुत रथ भी अँगरेजों ने बना रक्खा है? तब तो किसी न किसी दिन मृत्युलोक में चलकर अवश्य अपने नेत्रों को सार्थक कर आना चाहिए। चलो, ब्रह्मलोक में चलकर पितामह को भी चलने पर सहमत करने का उद्योग किया जाय। हम लोगों को तो फिर भी देखने-सुनने के लिए अभी बहुत समय है। परन्तु पितामह उस अवस्था में आ पहुँचे हैं कि दो दिन में यदि फूह करके उनके प्राण निकल गये तो कलकत्ता-जैसा सुन्दर स्थान उन्हें देखने को रह जायगा। यह खेद मेरे मन से फिर कभी दूर न होगा। इससे किसी कौशल से ब्रह्मा को मृत्युलोक में ले ही चलना चाहिए। वहाँ पहुँचने पर वे जब यह देखेंगे कि मेरी सृष्टि के भीतर भी एक आश्चर्यजनक सृष्टि हुई है तब दंग रह जायँगे। अन्त में मातलि को रथ सजाने की आज्ञा देकर वरुण को लिये हुए इन्द्र अन्तःपुर में गये और जल-पान आदि से निवृत्त होकर ब्रह्मलोक की ओर चले।

ब्रह्मलोक

ब्रह्मा के मानस-सरोवर में बहुत अधिक काई पड़ गई थी। इधर कई वर्ष से वर्षा ठीक न होने के कारण मछलियों को जल का बड़ा क्लेश था और बहुत-सी मछलियाँ मरी जा रही थीं। एक बँधे हुए

घाट पर बैठे-बैठे ब्रह्मा हुस-हुस करके कौवे उड़ा रहे थे और जो मछलियाँ मरकर जल में बहती हुई दिखाई पड़तीं उन्हें उठा-उठाकर वे एक स्थान पर रख रहे थे। परन्तु फिर भी चील, बगुले या अन्य शिकारी पक्षी उन मछलियों पर टूटे बिना नहीं रह सकते थे। अन्त में दिन ढलने के समय एक और वृद्ध के साथ अपने मानस-सरोवर के बग़ीचे में टहल रहे थे। उनके शरीर पर कलकत्ते से वरुण की लाई हुई धोती थी और पैरों में वहीं के जूते थे। हाथ में उनके बेंत की छड़ी थी। ठीक उसी समय इन्द्र और वरुण ने जाकर पितामह को साष्टाङ्ग प्रणाम किया।

ब्रह्मा पहले इन्द्र और वरुण को पहचान नहीं सके। परन्तु इन लोगों ने जब अपना परिचय दिया तब वे बहुत प्रसन्न हुए और कहने लगे कि भाई, अब आँखों से मुझे अच्छी तरह दिखाई नहीं पड़ता। अब तो तुम लोगों को छोड़कर यदि मैं किसी प्रकार जा पाता, तभी अच्छा था। तुम लोग तो सकुशल हो न? ऐसे असमय में यहाँ कैसे आ गये हो? स्वर्ग में दैत्यों ने किसी प्रकार का उपद्रव तो नहीं आरम्भ कर रक्खा है?

"नहीं, अभी तो ऐसी कोई बात नहीं है, परन्तु अँगरेज-जाति स्वर्ग में उपद्रव करने के विचार से आवश्यक आयोजन अवश्य करने लगी है।"

यह सुनकर ब्रह्मा का मुख मलिन हो गया। पहले कई बार दैत्यों ने जो-जो उपद्रव किये थे, उन्हें स्मरण करके वे थर-थर काँपने लगे और बोले कि चलो देखें, वेद में क्या लिखा है। अन्त में घर में आकर उन्होंने पुराने कपड़ों से बँधी हुई कुछ पुस्तकें निकालीं और आँखों में चश्मा लगाकर वे देखने लगे। देखते-देखते पितामह ने कहा—नहीं, इन लोगों से देवताओं को कोई भय नहीं है। अँगरेजों के राजत्व-काल में मनसा, जगन्नाथ आदि ग्राम-देवता स्वर्ग में चले आवेंगे। यह कहकर ब्रह्मा जोर से हँसने लगे।

इन्द्र ने कहा--पितामह, आपको कौन-सी ऐसी संतोषप्रद बात मालूम पड़ी, जिसके कारण आप इस प्रकार हँस रहे हैं?

ब्रह्मा ने कहा--भाई, अँगरेज़ों के राजत्व-काल में पतित-पावनी गङ्गा को मैं फिर अपने कमण्डलु में प्राप्त कर सकूँगा। आहा, मेरी प्यारी गङ्गा को भगीरथ जब मृत्युलोक में ले गये हैं तब से वह कितने क्लेश में है। उसके विछोह के कारण मैं भी बहुत दुःखी हूँ। अब इतने दिनों के बाद मेरा दुःख दूर होगा। गङ्गा कुछ ही वर्ष और नर-लोक में हैं।

वरुण ने कहा--निस्सन्देह मा के दुःख की सीमा नहीं है। उन्हें कलकत्ता का मल-मूत्र बहाने का कार्य करना पड़ता है। पहले जिस प्रवाह को धारण करने में ऐरावत नहीं समर्थ हो सके, वही प्रवाह आज अँगरेज़ों से परास्त हो गया है। अँगरेज़ लोग उसे खोदकर इच्छानुसार कहीं भी ले जाते हैं। इधर हावड़ा और हुगली के पास उसे बाँध भी दिया है। जब कभी मैं उनके समीप जाता हूँ तब कल-कल शब्दों से रोते-रोते वे कहती हैं--वरुण, शायद मेरे भाग्य फूट गये हैं। पिता जी शायद अब जीवित नहीं हैं, अन्यथा मेरी यह दुःखमय अवस्था देखकर वे कभी निश्चिन्त नहीं रह सकते थे। अन्त में वरुण ने बहुत ही आग्रह के साथ एक बार मृत्युलोक में चलकर गङ्गा को देख आने के लिए ब्रह्मा से निवेदन किया। ब्रह्मा ने रुँधे हुए स्वर से कहा--मेरी भी बड़ी इच्छा है एक बार पुत्री को देख आने की। परन्तु मुझमें अब इतना सामर्थ्य कहाँ है कि नर-लोक में जा सकूँ? एक तो निद्रा के कारण परेशान हूँ, दूसरे शरीर में मेरे इतना बल नहीं है कि एक पग भी सुखपूर्वक चल सकूँ।

इन्द्र ने ब्रह्मा को अँगरेज़ों के वाष्पीय रथ का हाल बतलाया और कहा कि आपको पैर रगड़ने की आवश्यकता न पड़ेगी। बड़े आराम से स्थान-स्थान पर विश्राम कराते हुए हम आपको ले चलेंगे।

देवराज के इस प्रकार आश्वासन देने पर पितामह मृत्युलोक में चलने को तैयार हो गये और नारायण को बुला लाने के लिए उन्हें वैकुण्ठ भेजा।

वैकुण्ठ

भोजन करने के बाद लक्ष्मी अपने कमरे में पलँग पर बैठी हुई दरी बुन रही थीं। वेणी खोलकर अपने बाल उन्होंने लटका दिये थे। शरीर पर उनके खूब बारीक और आकर्षक किनारे की साड़ी थी, हाथ में नई से नई डिजाइन का कङ्कण था और कानों में इयरिंग थी। शरीर का रङ्ग साड़ी के बीच से निखरा पड़ रहा था। एक तो उनके अधर में स्वभाव से ही लालिमा थी, दूसरे वे पान खाये हुए थीं, इससे वह लालिमा और भी अधिक बढ़ गई थी। नारायण उनके समीप ही तकिया की ठेस लगाये तथा फ़र्सी का नचा मुँह में लगाये हुए समाचार-पत्र पढ़ रहे थे और बीच-बीच में नारायणी के मुँह की ओर ताक-ताककर कुछ सोचने लगते थे। इतने में नौकर ने आकर सूचित किया कि आपके पास इन्द्र भगवान् और वरुणदेव आये हुए हैं।

यह समाचार पाकर नारायण बहुत उत्सुक हुए और नारायणी से कुछ क्षण के लिए अवकाश लेकर वे बाहर आये। पन्द्रह मिनट के बाद ही लौटकर उन्होंने कहा—प्रिये, मुझे आज्ञा दो, कुछ समय के लिए मैं मृत्युलोक में जाना चाहता हूँ। वहाँ जाकर कल की गाड़ी पर सवार होने तथा कलकत्ता देखने की मेरी बड़ी इच्छा है।

नारायण की यह बात सुनते ही नारायणी आग-बबूला हो उठीं। उनके हाथ में दरी का जो अंश था, उसे दूर फेंककर आँखें लाल-लाल किये हुए वे कहने लगीं—साथियों ने मिलकर ही तुम्हें खराब कर डाला है! भला कौन-सा मुँह लेकर तुम मृत्युलोक में जाना चाहते हो? क्या मृत्युलोक का नाम लेने में तुम्हें लज्जा नहीं आती? वहाँ जाने

में तुम्हें डर भी न मालूम पड़ेगा ? जरा सोचो तो कि सत्य, त्रेता तथा द्वापर-आदि युगों में मृत्युलोक में जाकर तुमने कितने उपद्रव किये हैं ! वहाँ कितनी उथल-पुथल मचाई है ! मुझे भी कितना क्लेश दिया है ! क्या वह सब तुम्हें भूल गया जो मृत्युलोक का नाम ले रहे हो ?

नारायण ने कहा--कलकत्ता देखने और कल की गाड़ी पर सवार होने की मुझे उत्कट इच्छा है, इसी लिए मैं वहाँ जा रहा हूँ और प्रतिज्ञा करके जा रहा हूँ कि तीन दिन से अधिक न लगाऊँगा ।

नारायणी ने कुछ समय तक धैर्य रखने का अनुरोध किया और कहा कि कल्कि अवतार धारण करने के बाद खूब जी भरकर कल की गाड़ी पर सवारी करना और कलकत्ता की सैर भी कर लेना। इस समय तुम वहाँ मत जाओ। परन्तु नारायण जब बार-बार आग्रह करने लगे और अवधि के भीतर लौट आने का आश्वासन देने लगे तब नारायणी ने कहा--नाथ, क्यों मेरा जी जलाते हो ? यह मैं लिखे देती हूँ कि वहाँ जाने पर तुम तीन दिन क्या तीस वर्ष में भी लौटकर न आ सकोगे। यदि वहाँ तुम्हें कोई आर्मेनियन वेश्या मिल गई तो भला तुम्हें मेरी याद आयेगी या स्वर्ग की ओर तुम लौटकर झाँकोगे ? तब तो शायद तुम उसी के साथ मुर्गी, अंडा, शराब, क़बाब, बिस्कुट, पावरोटी आदि खाकर जाति-धर्म तथा लोक-परलोक दोनों नष्ट कर दोगे। साथ ही हाथ में जो कुछ धन-सम्पत्ति है, वह सब भी कुछ दिनों में गँवा बैठोगे । या कहीं ब्राह्म-समाज में नाम लिखाकर विधवा-विवाह कर लोगे। कलकत्ता में थियेटर आदि और भी ऐसे कितने प्रलोभन हैं जो धनाधिपों को दीवाना और कंगाल बना देते हैं और मुझे भी उनका घर छोड़ देने के लिए बाध्य होना पड़ता है ।

इतना कहकर नारायणी सिसक-सिसक कर रोने लगीं। परन्तु नारायण ने सोचा कि यदि मैं नारायणी के प्रेम में मुग्ध होकर इनकी इच्छा के अनुसार कार्य करूँ तब तो रानियों का इतना बड़ा

दल* लेकर मैं कैसे संसार का काम-काज चला सकूँगा। इससे उनके रोने-धोने की ओर ध्यान न देकर वे कपड़े आदि पहनकर तैयार हो गये।

नारायण का यह निष्ठुरतापूर्ण कार्य देखकर नारायणी तो अवाक् हो गईं। रोते-रोते उन्होंने कहा--अच्छा, जब जाते ही हो तो ख़ूब सावधान होकर रहना, नये शहर में जाकर हलवाई की दूकान की चीज़ें मत खाना। वे चर्बी मिले हुए घी की चीजें बनाते हैं, जिन्हें खाने से पेट ख़राब हो जाता है। यदि स्मरण रहे तो ज़रा अधिक मात्रा में और पाँच रङ्ग का ऊन लेते आना, तुम्हारे लिए मैं सूटर बुनूँगी।

नारायण इन्द्र और वरुण के पास जाकर कहने लगे--चलो, भोला बाबा को भी साथ में लेते चलें नहीं तो मजा न आयेगा। अन्त में वे तीनों ही आदमी वहाँ से कैलास की ओर चल पड़े।

कैलास

उस दिन पौष मास की संक्रान्ति थी। पार्वती दाल की पूड़ी बना रही थीं और देवाधिदेव महादेव पास ही बैठे हुए कार्तिक को गालियाँ दे रहे थे।

पार्वती ने कहा--उसे डाँट-फटकार मत दिखलाओ। सयाना लड़का है। घर में पड़ा हुआ है, यही बहुत है। यदि कहीं क्रोध में आकर किसी दिन किसी ओर चला गया तो तुम्हें ही तो भोगना पड़ेगा।

पार्वती और महादेव में ये बातें हो ही रही थीं कि नन्दी ने आकर विष्णु, इन्द्र और वरुण के आगमन की सूचना दी। इन लोगों के असमय में आने का समाचार पाकर महादेव भयभीत हो उठे। इस आशङ्का से कि कहीं दैत्यों ने स्वर्ग में कोई उपद्रव तो नहीं खड़ा कर दिया, वे उतावली के साथ द्वार की ओर बढ़े।

---

* कहा जाता है कि नारायण के साठ हज़ार रानियाँ थीं।

यथोचित प्रणाम-आशीर्वाद तथा कुशल-प्रश्न के बाद महादेव की उत्सुकता निवृत्त करते हुए नारायण ने कहा--हम लोग कलकत्ता देखने जा रहे हैं, इसी लिए बड़े भैया ने आपको बुलाने के लिए हम लोगों को भेजा है।

सदाशिव ने कहा--भाई, इससे बढ़कर सुख की बात और क्या हो सकती है ? परन्तु घर छोड़कर एक मुहूर्त्त के लिए भी कहीं जाने का अवकाश मुझे नहीं है। ऐसा कोई भी आदमी नहीं है, जो मेरे कहीं चले जाने पर घर का काम सँभाल ले।

नारायण ने कहा--क्यों ? बच्चा कार्तिक और गणेश तो हैं ही, वे सब सँभाल लेंगे। यदि वे अभी से ही घर का काम-काज देखना न आरम्भ कर देंगे तो कैसे निर्वाह होगा ? अब तो वे इस योग्य हो भी गये हैं।

शिव--इन दोनों ने ही तो सारा मामला सत्यानाश कर रक्खा है ! ये ही नालायक़ यदि आदमी-जैसे आदमी होते तो चिन्ता करने की कौन-सी बात थी ? दो लड़कों में से एक भी किसी काम का नहीं है। कार्तिक तो एकदम से लुच्चा हो उठा है। रात-दिन वह केवल आइना-कंघी लिये ही बैठा रहता है। लेवेंडर, ओडीकलम आदि न जाने क्या-क्या निरर्थक चीजें वह मस्तक में लपेटता रहता है। उस बदमाश को यदि चौड़े किनारे की बारीक़ से बारीक़ धोती न मिले तो वह पहनता ही नहीं। उसके लिए पाँच रुपये की क़ीमत का बीनामैन के यहाँ का जोड़ा चाहिए। मैं तो पैसे बचाने के लिए बाघ के छाले से लज्जा-निवारण करता फिरता हूँ, इधर वह पाजी सिल्क का कुर्ता पहने हुए माँग काढ़कर बाबू बना फिरता है !

इन्द्र--आप पैसे क्यों दिया करते हैं ?

शिव--क्या मैं कभी पैसा देता हूँ ? आश्विन मास में वह अपने मामा के यहाँ जाकर पैसे ले आया करता है। मेरे श्वशुर तो लड़कों को और सत्यानाश किये डालते हैं। कहने पर वे मानते नहीं, छिपा-

छिपाकर रजिस्ट्री से नोट भेजते रहते हैं। गृहिणी भी कम नहीं हैं। पैसा-दो-पैसा जो कुछ वे पाती हैं, वह कार्तिक और गणेश को ही देती रहती हैं।

इन्द्र––गणेश कैसा है?

शिव––वह भी उसका भाई ही तो है। वह पाजी रोज आध मन सिद्धि (भाँग) खा जाता है। तिस पर आजकल उसका नाम पड़ा है सिद्धिदाता गणेश।

नारायण––अच्छा हुआ। वृद्धावस्था में जैसे तुम विवाह के लिए पागल बने फिर रहे थे, वैसे ही अब विवाह का फल भोगो।

इस प्रसंग को और बढ़ने का अवसर न देकर इन्द्र ने चलने का प्रस्ताव किया। महादेव ने कहा––दालपूड़ी बन रही है, खा लो, तब जाओ। किन्तु नारायण ने प्रतीक्षा करने में असमर्थता प्रकट की और वहाँ से बिदा होकर सीधे मानस-सरोवर गये। वह रात उन लोगों ने मानस-सरोवर में व्यतीत की और दूसरे दिन ब्रह्मा को साथ में लिये हुए हरिद्वार आ पहुचे।*

हरिद्वार

हरिद्वार में प्रवेश करके ब्रह्मा ने कहा––यह क्या? चलते समय हम लोग पूर्णघट का दर्शन करने तथा भङ्ग और बिल्वपत्र का आघ्राण करने के बाद सात बार दुर्गा नाम का जप करना तो भूल ही गये। इतनी देर के बाद मन खराब होने लगा है। चलो, लौट चलें।

नारायण––हम लोगों ने उषाकाल में यात्रा की है। उषाकाल

*कहा गया है कि मानस-सरोवर हरिद्वार से बहुत समीप है और हरिद्वार ही स्वर्ग का द्वारस्वरूप है। इसलिए देवतागण पहले-पहल आकर यहीं उपस्थित हुए।

न तो दिन है और न रात्रि। इससे यात्रा उत्तम ही हुई है। आप निरर्थक अपने मन में द्वैविध्य न आने दीजिए।

वरुण--हरिद्वार के दोनों ओर पर्वतश्रेणी है। बीच से तीन धाराओं में विभक्त होकर गङ्गा जी बह रही हैं। ये तीनों धारायें आकर कनखल में मिली हैं। पर्वतों में वास करने योग्य बहुत-सी गुफायें हैं। उनमें साधु लोग निवास किया करते हैं। हरिद्वार में साधुओं के कई मठ आदि भी हैं, किन्तु यहाँ गृहस्थ कोई नहीं रहता।

हमारे देवगण मकर-संक्रान्ति के दिन हरिद्वार में आकर पहुँचे थे। एक तो जाड़े की ऋतु थी, दूसरे पहाड़ी देश था। ऐसी दशा में वहाँ उस समय कितने कड़ाके का जाड़ा पड़ रहा था, इस बात का अनायास ही अनुमान किया जा सकता है। इसमें संदेह नहीं कि देवतागण साथ में काफ़ी गरम कपड़े लेकर चले थे, किन्तु वृद्ध ब्रह्मा को जाड़े के मारे बड़ा क्लेश मिला और वे कहने लगे--क्यों वरुण, यह हरिद्वार है या यमद्वार है? ज़रा आग जलाओ, नहीं तो मैं अब न जीवित रह सकूँगा।

ब्रह्मा की यह दशा देखकर नारायण बहुत दुःखी हुए। उन्होंने कहा--आपको क्या पड़ी थी ऐसे जाड़े में मृत्युलोक में आने की?

ब्रह्मा ने कहा--क्या मुझे शौक़ लगा था मृत्युलोक में आने का? परन्तु गङ्गा को बाँध जो रक्खा है अँगरेजों ने!

वरुण ने कहा--हम लोगों ने अच्छा समझकर ही शीतकाल में मृत्युलोक की यात्रा की है किन्तु भाग्यवश हो गया बुरा। वहाँ से ज़रा ही दूर पर कुछ कुटीर दिखाई पड़े। उनमें से एक में जाकर देवताओं ने आश्रय लिया और बड़ी कठिनाई से आग जलाकर ब्रह्मा को तपाया। अब आग जल जाने के कारण देवताओं की चिलम भी चढ़ गई।

दो-चार फूँक तम्बाकू पीने के बाद जब कुछ गर्माहट आई तब वरुण ने कहा--शायद, अभी हाल में हरिद्वार का कुम्भमेला हुआ है। भगीरथ

की तपस्या से संतुष्ट होकर भगवती भागीरथी जब मृत्युलोक में आईं, तब पहले-पहल इसी स्थान पर गिरी हैं। इसलिए यहाँ प्रत्येक बारह वर्ष के अन्तर पर एक बहुत बड़ा मेला हुआ करता है। यह मेला कुम्भमेला के नाम से विख्यात है। महाविषुव संक्रान्ति के दिन हरिद्वार में कुम्भ-योग होता है और उस अवसर पर वहाँ स्नान करनेवालों की बहुत बड़ी भीड़ होती है। भारत के विभिन्न प्रान्तों के अगणित राजा-महाराजा, सेठ-साहूकारे तथा साधारण स्थिति के लोग कुम्भस्नान के लिए आते हैं और यथाशक्ति दान करते हैं। देश भर में जितने नागा, संन्यासी, शैव, शाक्त, दण्डी, महन्त, परमहंस, अवधूत और वैरागी आदि होते हैं, वे सभी इस कुम्भमेला में सम्मिलित होते हैं, केवल ब्राह्म सम्प्रदाय के ही अनुयायी गङ्गा जी को साधारण नदी कहकर इनकी अवज्ञा किया करते हैं और मेले में योगदान करने के लिए नहीं आया करते। कुम्भ के समय यह स्थान एक नगर के रूप में परिणत हो जाया करता है और चारों ओर आनन्द-उत्सव तथा नृत्य-गीत की बाढ़-सी आ जाया करती है।

ब्रह्मा—तो इसका अर्थ यह है कि पृथ्वी पर अभी गङ्गा का कुछ-कुछ मान है।

वरुण—इसी लिए तो पृथ्वी रुकी भी है। जनता के हृदय में जो यह थोड़ी-सी भक्ति है, उसका अन्त होते ही पृथ्वी भी न रह सकेगी।

ब्रह्मा—मेले में आकर यात्री लोग किस स्थान पर स्नान किया करते हैं?

वरुण—पर्वत को तोड़कर गङ्गा जी जिस स्थान पर पहले-पहल गिरी थीं, वह ब्रह्मकुंड कहलाता है। यात्री लोग इसी कुंड में स्नान किया करते हैं। इस स्थान का वास्तविक नाम है मायापुरी* । इसके अधीश्वर थे दक्ष-प्रजापति। इस मायापुरी की गणना आपकी सप्तपुरियों में की जाती है।

---

*मायापुरी के पूर्व में नीलपर्वत, पश्चिम में विल्वकेश्वर, दक्षिण में पिछोड़नाथ और उत्तर में लक्ष्मण-झूला है।

ब्रह्मा की आज्ञा के अनुसार सब लोग ब्रह्मकुंड * में स्नान करने के निमित्त चले। वहाँ जाकर स्नान तथा संध्या-पूजा-आदि करने के बाद उन लोगों ने बैग से फल-फूल तथा रसगुल्ला आदि निकालकर गङ्गादेवी की मूर्ति † को नैवेद्य लगाया, बाद में वे लोग स्वयं भोजन करने लगे। क्षुधा निवृत्त होने पर देवतागण ने तमाल-पत्र का सेवन किया। तब वे लोग नारायण-शिला के दर्शन के निमित्त चले।

वरुण ने कहा—हे पितामह, नारायण की इस मूर्त्ति की पूजा जो आपके समीप है, दक्ष-प्रजापति किया करते थे। यहाँ गोदान और अन्न-दान करनेवाला विष्णुलोक को प्राप्त होता है।

नारायण-शिला से देवतागण कुशावर्त† घाट की ओर चले।

ब्रह्मा—यह घाट इतना प्रसिद्ध क्यों है ?

वरुण—कोई ऋषि समाधिस्थ होकर यहाँ योग-साधन कर रहे थे। उस समय गङ्गा जी हिमालय से गिरकर अपनी धारा में उनका कुश बहा ले गईं। ध्यान भंग होने पर मुनि को जब कुश नहीं दिखाई पड़ा तब क्रोध में आकर उन्होंने अपने कुश के सहित गङ्गा जी को आकर्षित किया। पतितपावनी भगवती गङ्गा जी प्रसन्नभाव से मुनि के समीप आईं। उन्होंने उनका कुश लौटाल दिया उन्हें और वर दिया कि आज से इस स्थान का नाम कुशावर्त होगा। यहाँ आकर जो व्यक्ति अपने पितरों के निमत्त श्राद्ध-तर्पण करेगा, उसके पितर विष्णु के समान होकर विष्णुलोक में वास करेंगे। इसलिए आज भी यात्री-गण यहाँ पर श्राद्ध-तर्पण किया करते हैं।

ब्रह्मा—यहाँ मछलियाँ कितनी दिखाई पड़ रही हैं ?

वरुण—ये तीर्थस्थान की मछलियाँ हैं, इसलिए इन पर कोई किसी प्रकार का अत्याचार नहीं करता। मछलियाँ भी मनुष्य को

---

* ब्रह्मकुंड के पासवाले मन्दिर में विष्णु का चरण-चिह्न और गङ्गा जी की मूर्ति है।

† हरिद्वार से आध कोस दक्षिण।

देखकर भयभीत नहीं होतीं। यात्रीगण यहाँ आ-आकर इन मछलियों को लाई-चिउड़ा खिलाया करते हैं। उस समय हज़ारों मछलियाँ आ-आकर एकत्र हो जाती हैं।

इन्द्र—दक्षप्रजापति का घर कहाँ है?

वरुण—यहाँ से दक्षिण-पूर्व के कोने की ओर।

अब सब लोग दक्षिण-पूर्व के कोण की ओर चले। निर्दिष्ट स्थान पर पहुँचकर वरुण ने कहा—पितामह, यही आपके प्रिय-पुत्र का घर है। यहीं पर शिव-रहित यज्ञ हुआ है। सती के विरह के कारण देव-देव महादेव ने यहाँ पर दक्ष का यज्ञ भंग करके उनका मस्तक काट डाला था और उनके धड़ में एक बकरे का मस्तक लगा दिया था। अन्त में दिव्य-ज्ञान प्राप्त करके दक्ष ने यहीं पर दक्षेश्वर* नामक शिव की स्थापना की थी।

इन्द्र—तो क्या सती ने इसी स्थान पर प्राण-त्याग किया था?

वरुण—नहीं, सती ने इस स्थान के दक्षिण-पूर्व के कोने पर वर्त्तमान सतीकुंड नामक स्थान पर प्राण-त्याग किया था। कहा जाता है कि इस कुण्ड में जो स्त्री सात रविवार स्नान करती है, वह सती के ही समान सौभाग्यशालिनी होकर शिवलोक प्राप्त करती है।

इन्द्र—आहा, इन सब स्थानों को देखने पर कहीं उस शोकमय घटना की स्मृति नवीन न हो जाय, कदाचित् इसी आशङ्का से सदाशिव हम लोगों के साथ आने को तैयार नहीं हुए।

वरुण—स्त्री-वियोग का शोक क्या साधारण शोक है? लोग दूसरा विवाह कर लिया करते हैं अवश्य, किन्तु प्रथम स्त्री का वियोग उनके हृदय को जीवन-पर्यन्त सन्ताप देता रहता है। निस्सन्देह हमारे सदाशिव की दूसरे विवाह की स्त्री गौरी उनकी पहली स्त्री के समान ही समस्त गुणों से अलंकृत हैं, किन्तु भाई साहब के हृदय में जब प्रथम पत्नी के गुणों की स्मृति उदित होती है तब क्या उनकी आत्मा को कम

---

* दक्ष के गृह में शिव जी की वह मूर्ति आज भी वर्तमान है।

क्लेश मिलता है? पति की निन्दा सहन करने में असमर्थ होने के ही कारण सती ने प्राण-त्याग किया था। यह क्या कोई साधारण बात है? आज भी ऐसा दुष्कर कार्य करनेवाली स्त्री कहीं देखने में आती है? भैया को दूसरा विवाह न करके सती के ही प्रेम में आजन्म मग्न रहना चाहिए था। परन्तु वे तो बराबर अधःपतन की ओर जा रहे थे। विवाह किये बिना सांसारिक कार्यों में उनका मन ही नहीं जम सकता था। वे तो अर्थ को अनर्थ समझने लग पड़े थे। एक तो गाँजा पी-पीकर वे अपना शरीर ही सुखाये डालते थे। इन वर्तमान भगवती ने उन्हें बहुत कुछ सँभाल रक्खा है, अन्यथा जिस समय वे सती का निर्जीव शरीर मस्तक पर लादे-लादे पागल की तरह घूमा करते थे, उस समय क्या इस बात का विश्वास होता था कि ये फिर कभी संसार के काम-काज में मन लगा पावेंगे?

अब देवतागण कनखल की ओर चले। वहाँ पहुँचकर वरुण ने कहा कि विदुर ने इसी स्थान पर योग-साधन किया था। विदुर और मैत्रेय का संवाद भी यहीं पर हुआ था। यहाँ पर जो कुण्ड आप देख रहे हैं, उसमें सात रविवार कोई भी नहीं स्नान कर पाता।

अब वरुण ब्रह्मा, विष्णु और इन्द्र को लेकर भीमगदा देखने के लिए चले। वहाँ पहुँचकर उन्होंने सबको बतलाया कि स्वर्गारोहण के समय भीम ने यहीं पर अपनी दुर्जय गदा का परित्याग किया था। यह जो बहुत बड़ी गदा के आकार का पत्थर दिखाई पड़ रहा है, लोग कहते हैं कि यही भीम की गदा है।

ब्रह्मा—कुरुक्षेत्र यहाँ से कितनी दूर है?

वरुण—अधिक दूर नहीं है। क्या देखने चलिएगा?

ब्रह्मा—अभी नहीं। कलकत्ता से लौटने पर जो कुछ हो सकेगा, वह किया जायगा।

वरुण—देखिए पितामह, भीम की गदा में ठोकर मारने पर

धम-धम की आवाज़ होती है। यह आवाज़ आने का कारण कोई नहीं बतला पाता।

देवगण बारी-बारी से गदा में ठोकर मारने लगे और उसमें से धम-धम की आवाज़ आने लगी। इससे उन लोगों को बड़ा मज़ा आया।

वरुण ने कहा--पितामह, इस स्थान के दक्षिण-पूर्व के कोण में सूर्यकुण्ड है और यहाँ से दो कोस उत्तर सप्त-धारा है। यहाँ से नौ कोस उत्तर हृषीकेश है।

हृषीकेश में सप्तर्षि-मंडल की तपस्या का स्थान आज भी बना हुआ है। इस स्थान से तीन कोस उत्तर लक्ष्मणझूला नामक स्थान है। वहाँ बैठकर लक्ष्मण जी ने तपस्या की थी। लक्ष्मणझूला के समीप गङ्गा जी के ऊपर बेंत का एक पुल बना हुआ है। उस पुल को पार करके बदरिकाश्रम जाना होता है। कहा जाता है कि जो लोग महापापी होते हैं, वे यह पुल नहीं पार कर पाते। पार करते समय जल में गिर पड़ते हैं।

इन्द्र--चलिए, बेंत का पुल पार करके बदरिकाश्रम देख आवें।

ब्रह्मा--नहीं भाई, यदि कहीं पैर बिचल गया और पानी में गिर पड़े तो लोग सदा ही यह कहते रहेंगे कि विधाता पापी थे। वरुण, यहाँ आस-पास यदि कोई और उत्तम स्थान हो तो दिखलाओ।

ब्रह्मा की यह बात सुनकर वरुण सबको साथ में लिये हुए नीलपर्वत दिखलाने के लिए चले। वहाँ पहुँचकर वरुण ने कहा--देखिए, यह नीलपर्वत है और यह नदी नीलधारा के नाम से प्रसिद्ध है। यह केवल गङ्गा की एक धारा भर है। यहाँ का जल स्वाभाविक रूप से नीलवर्ण का है।

ब्रह्मा--इस घाट का नाम क्या है?

वरुण--इस घाट का नाम नीलधारा का घाट है। पत्थर की बनी हुई इस सीढ़ी पर जो शिव की दो मूर्त्तियाँ दिखाई पड़ रही हैं उनमें

से एक का नाम गौरीशंकर है और दूसरी का विल्वकेश्वर। इस स्थान से कोस भर पश्चिम विल्वकेश्वर नामक एक महादेव हैं। वे इस मायापुरी के क्षेत्रपाल देवता हैं। इनके अतिरिक्त नारायण-शिला से बारह कोस दक्षिण पिछोड़नाथ महादेव हैं । वहाँ जाने का मार्ग बड़ा ही दुर्गम है ।

देवगण इस प्रकार बातचीत कर ही रहे थे, इतने में खड़खड़ाते हुए कई इक्के उधर से आ निकले। इन नवीन ढंग के रथों को देखकर ब्रह्मा को बड़ा कौतूहल हुआ । वरुण ने इक्के के सम्बन्ध की बहुत-सी बातें बतलाईं । अन्त में छः-छः आने पर चार इक्के ठीक करके देवतागण एक-एक पर सवार हो लिये तब सारथी के चाबुक का आघात बार-बार, जोर-जोर से सहते हुए अश्विनीकुमारगण किसी प्रकार खड़-खड़ करके चलने लगे।

इन्द्र—क्यों वरुण, भला इनसे भी बढ़कर पापी पृथिवी पर हैं ?

वरुण—हाँ।

इन्द्र—वे कौन हैं ?

वरुण—जो लोग आफ़िसों में क्लर्क का काम करके जीविका का सम्पादन किया करते हैं और जो लोग बड़े आदमियों की मुसाहबी किया करते हैं।

इक्के पर सवार होकर जाते-जाते एकाएक एक नहर पर ब्रह्मा की दृष्टि गई। वरुण से उन्होंने उसका विवरण पूछा और गङ्गा को इस प्रकार काटकर उनकी इच्छा के विरुद्ध स्थान-स्थान पर ले जाने का हाल सुनकर वे बहुत दुखी हुए। देखते ही देखते लगभग तीन बजे देवताओं के इक्के सहारनपुर के बाजार में आ पहुँचे। वहाँ के बाजार में कुछ समय तक घूमने के बाद वे लोग स्टेशन गये और वहाँ टिकट खरीदकर दिल्ली की गाड़ी में जा बैठे।

दिल्ली

ट्रेन से उतरकर देवगण ने गेट पर टिकट दिया। बाहर निकलने पर उन्होंने देखा तो बहुत-सी गाड़ियाँ खड़ी थीं। गाड़ीवाले चिल्ला-चिल्लाकर अपनी-अपनी गाड़ी पर आने के लिए यात्रियों को आग्रह-पूर्वक आह्वान करने लगे। देवगण एक गाड़ी पर जाकर बैठ गये। वह गाड़ी उन्हें लेकर तेजी के साथ नगर की ओर बढ़ी। यमुना के तट पर जाकर उन सबने स्नान तथा संध्या-पूजा आदि किया। मध्याह्न-काल व्यतीत हो जाने पर वे सब भ्रमण के लिए नगर की ओर चले। रास्ते में ब्रह्मा ने कहा--वरुण, भला इस नगर में तीन प्रकार के मन्दिर क्यों दिखाई पड़ रहे हैं?

वरुण नें कहा--इस दिल्ली नगर को क्रम से हिन्दू, मुसलमान और अँगरेज, इन तीन जातियों की राजधानी बनने का सौभाग्य मिला है। इसलिए पहले यहाँ मन्दिर बने, बाद को मस्जिदें बनीं और सबसे अन्त में चर्च बना।

इन्द्र--किस हिन्दू राजा ने यहाँ राज्य किया था?

वरुण--पहले इस नगर को लोग इन्द्रप्रस्थ कहा करते थे। राजा युधिष्ठिर ने यहीं पर राज्य किया था।

ब्रह्मा--इन्द्रप्रस्थ किस स्थान को कहते हैं?

नारायण--वह स्थान यमुना नदी के दक्षिण में था।

वरुण--वर्त्तमान दिल्ली से एक कोस की दूरी पर है वह स्थान। चलिए, आपको दिखला ले आवें, यह कहकर सब लोग उसी ओर चले।

ब्रह्मा--ये घरों के जो ध्वंसावशेष आदि हैं, वे सब कहाँ के हैं?

वरुण--यह इन्द्रप्रस्थ का रास्ता है। राजा धृतराष्ट्र ने पाँचों पाण्डवों को पाणिपत, सेनपत, इन्द्रपत, टिलपत तथा भागपत नामक जो पाँच खण्डभूमि प्रदान की थी, उनमें से दो खण्ड, टिलपत और भागपत आज भी वर्त्तमान हैं और वे ये ही हैं। शेष तीन खण्ड यमुना के गर्भ

में लीन हो गये हैं। इस स्थान के चारों ओर परिखा से घिरा हुआ एक पुराना क़िला था। इस क़िले में मुसलमानों ने इतनी कुशलता के साथ परिवर्तन किया है कि इसे देखकर कोई यह कह ही नहीं सकता कि यह पहले का बना हुआ है। पितामह, यह जो आप हुमायूँ की मस्जिद देख रहे हैं, यहाँ महावीर अर्जुन का क़िला था। इधर शेरशाह का राजप्रासाद दिखाई पड़ रहा है। यह वह स्थान है, जहाँ नारायण तथा महर्षि व्यास आदि ने पाण्डु के पुत्रों को सुरक्षित कर रक्खा था। जिस स्थान पर आकर अङ्ग, बङ्ग तथा कलिङ्ग आदि देशों के राजा राजसूय-यज्ञ में सम्मिलित होने के लिए एकत्र हुए थे, उसका अब चिह्न तक नहीं है। पुरानी दिल्ली उसी स्थान पर बसी हुई है। जिस घाट पर युधिष्ठिर ने अश्वमेध-यज्ञ का होम किया था, वह घाट आज भी वर्त्तमान है और उसे लोग आगमजोड़ का घाट कहा करते हैं।

ब्रह्मा—इस स्थान का नाम क्या है? क्या यहाँ पर शेरशाह के राजभवन बनवा लेने के बाद इस स्थान के नाम में परिवर्तन करने का कोई उद्योग किया गया था?

वरुण—शेरशाह ने इसे अपने नाम के आधार पर शेरगढ़ के नाम से प्रसिद्ध करने के लिए बहुत अधिक उद्योग किया था, किन्तु इसका कोई परिणाम नहीं हुआ। आज भी यह 'पुराना क़िला' या 'इन्द्रपत' के नाम से ही प्रसिद्ध है। मुग़ल बादशाह हुमायूँ इसी स्थान पर घोड़े पर से गिरकर मरा था।

इन्द्र—इस स्थान का नाम दिल्ली क्यों पड़ा?

वरुण—लोगों का कहना है कि दिलू राजा के नाम के आधार पर इस नगर का नामकरण हुआ है। यहाँ लोहे के एक स्तम्भ पर लिखा हुआ था कि १४ वीं शताब्दी में यह नगर बसा है। यह लेख संस्कृत में है, इससे यह निश्चित रूप से मालूम पड़ता है कि यह नगर किसी हिन्दू राजा का ही बसाया हुआ है। इस लौहस्तम्भ के सम्बन्ध में

किसी-किसी का कथन है कि यह भीम की हाथ में लगाने की छड़ी है। कोई-कोई कहते हैं कि यह स्तम्भ वासुकि के मस्तक तक गड़ा हुआ है। अस्तु, इसके ऊपर जो लेख है, वह पढ़ा नहीं जाता, इससे आज तक यह नहीं निर्णय किया जा सका कि यह क्या चीज़ है।

घूमते-घूमते देवतागण लालकोट के पास पहुँचे। वरुण ने ब्रह्मा आदि को बतलाया कि इसका नाम लालकोट है। द्वितीय अनङ्गपाल ने इसका निर्माण करवाया है। इसकी परिधि ढाई मील है। चहारदीवारी इसकी ६० फ़ुट ऊँची थी और यह चारों ओर से खाई से घिरी हुई थी। तीन ओर की खाई आज भी वर्त्तमान है, दक्षिण ओर की भठ गई है। लालकोट में कई फाटक हैं, जिनमें से पश्चिम ओर के फाटक को लोग 'रणजित्' फाटक कहते हैं।

यह लालकोट देखकर देवतागण आगे बढ़े। थोड़ी दूर चलने के बाद ब्रह्मा ने कहा कि इस तालाब का क्या नाम है?

वरुण ने कहा—इसका नाम अनङ्गपाल-तालाब है। १६९ फ़ुट यह लम्बा है और १५२ फ़ुट चौड़ा। यह राजा द्वितीय अनङ्गपाल का बनवाया हुआ है। इन्हीं द्वितीय अनङ्गपाल के पुत्र तृतीय अनङ्गपाल के शासनकाल में मुहम्मद ग़ोरी ने भारत पर आक्रमण किया था। आक्रमण के भय से राजा अनङ्गपाल ने परिवार-सहित लालकोट दुर्ग में आश्रय ग्रहण किया था। इस क़िले को लोग आज भी 'राय पृथुराज का क़िला' कहा करते हैं। क़िले के जिस फाटक से मुसलमानों ने प्रवेश किया था, वह ग़ज़नी-गेट कहलाता है।

फिर सब लोग चलने लगे। कुछ दूर चलने के बाद इन्द्र ने कहा—वरुण, इस स्थान का नाम क्या है?

वरुण ने कहा—इसका नाम है भूतख़ाना। पृथुराज की राजधानी में २७ बहुत सुन्दर-सुन्दर मन्दिर थे। उन्हीं सब मन्दिरों के माल-मसाले से यह भूतख़ाना तैयार हुआ है।

सब लोगों ने उसमें प्रवेश किया।

ब्रह्मा—इसमें ये सब जो मूर्तियाँ हैं, वे किसकी हैं ?

वरुण—पर्य्यङ्क पर ये जो महापुरुष सोये हुए हैं, जिनके नाभि-देश से कमल का फूल निकला है और मस्तक तथा चरण के पास एक-एक आदमी बैठे हुए हैं, वे हमारे वर्त्तमान नारायण हैं।

नारायण—मुझे लाकर अन्त में भूतख़ाना में बैठाल दिया है! दुष्ट कहीं का !

वरुण—बचने कोई नहीं पाया है। यह देखिए, ऐरावत की पीठ पर समासीन हमारे देवराज हैं। देखिए पितामह, हंस की पीठ पर आप भी विराजमान हैं। उधर देखिए, बैल की पीठ पर नन्दी-सहित हमारे देवाधिदेव महादेव वर्त्तमान हैं।

नारायण—यह मस्जिद किसकी है?

वरुण—यह सबसे पहले मुसलमान बादशाह कुतुब इसलाम की मसजिद है। इसमें प्रवेश करने के तीन द्वार हैं। हिन्दुओं के देव-मन्दिर तोड़ने पर जो मसाला मिला है, उसी से यह मसजिद तीन वर्ष में बनाकर तैयार की गई है। एक समय इस मसजिद में इतनी भव्यता थी कि तैमूरलंग ने इसी नमूने की एक मसजिद समरक़न्द में बनवाने का विचार किया था।

अब देवतागण कुतुबमीनार की ओर चले। वहाँ पहुँचकर ब्रह्मा ने कहा—वाह, यह सचमुच देखने योग्य वस्तु है। इसमें पाँच थाक में लाल, सफ़ेद तथा रक्तवर्ण के पत्थर लगे हुए हैं।

वरुण ने कहा—पितामह, यह मीनार १५२ हाथ ऊँचा है और इसकी परिधि है ९५ हाथ। ये जो विभिन्न रंगों की पाँच थाकें हैं, ये पाँच कोठरियाँ हैं। इन कोठरियों में से कोई तो चौकोर है, कोई तिकोनी है, कोई गोल है, कोई कुछ अर्द्धचन्द्राकार है और कोई पूर्ण रूप से अर्द्धचन्द्राकार है। इसमें ऊपर चढ़ने के लिए ३७६ सीढ़ियाँ हैं।

इन्द्र—इसके निर्माण के सम्बन्ध की बहुत-सी बातें नागरी अक्षरों में लिखी हुई हैं। कुछ लोगों का मत है कि इसे किसी हिन्दू राजा ने

इस विचार से बनवाया था कि उनकी कन्या सूर्योदयकाल में यमुना जी का दर्शन कर लेने के बाद देवाराधन कर सके। कुछ लोग कहते हैं कि सैयद अहमद मुंशी नामक अकबरशाह का एक कर्मचारी था, नगरवासियों की सहायता से उसी ने इस मीनार का निर्माण करवाया था। मीनार का द्वार उत्तर दिशा में है। इससे भी यह हिन्दू का-सा ही द्वार मालूम पड़ता है। इसके सिवा मीनार के भीतर एक घंटा भी टँगा हुआ है। ये सभी ऐसी बातें हैं जिनसे स्पष्टरूप से प्रतीत होता है कि यह किसी हिन्दू का ही बनवाया हुआ है। परन्तु मुसलमानों ने इतनी कुशलता से इसमें परिवर्तन किया है कि एकाएक देखकर यह कोई नहीं समझ सकता कि इसकी निर्माण-कला में ज़रा भी हिन्दूपन है। मीनार के ऊपर से चढ़कर देखने पर यमुना जी सूत के समान और आदमी कठपुतली के समान दिखाई पड़ता है। इसके चारों ओर जो ध्वंसावशेष वर्त्तमान है, उसे देखने पर ज्ञात होता है कि इसकी टक्कर का नगर भूमण्डल में शायद दूसरा नहीं था।

ब्रह्मा—इसके समीप जो ऊँचा स्थान दिखाई पड़ रहा है, वह क्या है ?

वरुण—इसको लोग असमाप्त मीनार कहते हैं। कहा जाता है कि पहलेवाली मीनार को देखकर एक और हिन्दू बालिका ने वैसा ही एक मीनार बनवाने का पिता से आग्रह किया। वह आधा ही बन पाया था कि मुसलमानों ने नगर पर आक्रमण कर दिया, इससे वह अधूरा ही पड़ा रह गया।

इन्द्र—दक्षिण-पश्चिम की ओर जो कूप दिखाई पड़ रहा है, वह किसका है ? वह क़ब्र किसका है ? वह ध्वंसावशेष कब का है ?

वरुण—यह कूप द्वितीय अनङ्गपाल का है और क़ब्र आदमख़ाँ नामक एक व्यक्ति का है।

चलते-चलते देवगण को एक स्थान पर एक अन्धकारमय घर में हनूमान् जी की एक मूर्ति दिखाई पड़ी। उसे देखकर वरुण ने हँसते

हुए कहा--हनू, लङ्का के दुर्जय समर में तुमने विजय प्राप्त की है और अपनी पीठ पर गन्धमादन पर्वत को लाद लाये हो। परन्तु आज तुम दिल्ली के अन्धकारमय घर में क्यों बैठे हो? यह कहकर और देवताओं के साथ वरुण आगे बढ़े।

इन्द्र--वरुण, सामने जो दिखाई पड़ रहा है, वह क्या है?

वरुण--उसका नाम है जहाँपनाह। उसमें बावन फाटक और सात क़िले हैं, इसलिए वह बावन क़िला सात दरवाज़ा कहलाता है। उसके नाम के अनुसार लोग आज भी कहा करते हैं कि दिल्ली सात क़िले का शहर है। यह कहकर आगे बढ़ते-बढ़ते वरुण ने कहा--यह जो क़ब्र दिखाई पड़ रही है, वह शाहज़ादी जहाँनारा की है। जहाँनारा शाहंशाह शाहजहाँ की बेटी थी। कारावास के समय पिता की सेवा करने के विचार से उसने स्वयं भी कारावास का जीवन स्वीकार किया था। इससे दिल्ली में उसका नाम बड़े आदर के साथ लिया जाता है।

देवगण एक बहुत बड़े कूप के पास पहुँचे। तब ब्रह्मा ने कहा--वरुण, यह कूप किसका है?

वरुण--लोग इसे 'निज़ामुद्दीन का कूप' कहते हैं। यहाँ प्रतिवर्ष एक बहुत बड़ा मेला होता है और यात्री लोग बहुत अधिक संख्या में आकर यहाँ स्नान किया करते हैं। उधर देखिए, वह फ़िरोज़ाबाद है। फ़िरोज़-शाह ने उसे बसाया था। यहाँ बीस राजभवन, दस मनुमेंट, पाँच क़ब्रें तथा कालेज, अस्पताल आदि हैं। यह जो बहुत ऊँचा पिलर दिखाई पड़ रहा है, फ़िरोज़शाह की छड़ी कहलाता है। यह इतना ऊँचा है कि पाँच कोस की दूरी से दिखाई पड़ता है।

अब वरुण ब्रह्मा आदि को लिये हुए सातपुला बाँध देखने के लिए चले। रास्ते में उन्हें एक दीर्घ आकार की स्त्री मिली जो नयनसुख के बुर्क़े से सिर से पैर तक ढके हुए पैर बढ़ाती चली जा रही थी। उसे देखकर देवता लोग विस्मित हो गये और रास्ता छोड़कर भगे।

वरुण ने कहा--आप लोग उन्हें देखकर डर क्यों गये? वे किसी

प्रतिष्ठित मुसलमान-परिवार की रमणी हैं। आर्थिक दुरवस्था के कारण पैदल चल रही हैं और इस भय से कि देखने पर कहीं कोई पहचान न ले, अपना सारा शरीर ढके हुए हैं।

इन्द्र--इस स्थान का नाम क्या है ?

वरुण--इसे लोग सातपुला बाँध कहा करते हैं। यहीं पर आक्रमण करके तैमूरलंग ने लाखों आदमियों का प्राणनाश किया था, बहुत-सी बहुत बड़ी-बड़ी अट्टालिकायें भूमिसात कर दी थीं और कितना धन-रत्न लूटकर ले गया था। शेरशाह के बेटे सलीमन ने इस नगर का निर्माण किया था। औरंगज़ेब की आज्ञा के अनुसार मुराद को बन्दी करके यहीं लाया गया था। दारा का बेटा भी यहीं क़ैद था। यह स्थान भारत की रंगभूमि है। मुग़ल, पठान और हिन्दू राजाओं ने कितने रंग दिखलाये थे यहाँ।

ब्रह्मा--उधर जो बहुत ऊँचा मन्दिर है, वह क्या है ?

वरुण--वह हुमायूँ बादशाह का टुम्ब है। दिल्ली की यह एक बहुत ही अद्भुत मसजिद है। आकार इसका बहुत बड़ा है। इसका निर्माण करने में लगभग पन्द्रह लाख रुपयों का व्यय हुआ था। यहीं हुमायूँ की प्यारी बेगम हमीदाबानू और दारा की क़ब्र है। इनके सिवा फ़िरोजशाह, जहाँदारशाह तथा आलमगीर दूसरे और तीसरे की भी यहाँ पर क़ब्र है। इन समस्त क़ब्रस्तानों के चारों ओर बहुत ही सुन्दर बग़ीचा है। बग़ीचे में स्थान-स्थान पर फ़ौवारे बने थे, जिनके द्वारा पानी का छिड़काव हुआ करता था। बग़ीचा एक चहार दीवारी से घिरा हुआ है, जिसके ऊपर स्थान-स्थान पर रंग-बिरंगे स्तम्भ हैं।

इसके बाद सब लोग शाहजहाँबाद पहुँचे। यहाँ बाजार आदि के सिवा एक अच्छी-सी बस्ती भी है। इसके चारों ओर जो चहारदीवारी है, उसके भीतर प्रवेश करने के लिए काश्मीर, काबुल, लाहौर, फ़रास-खाना, अजमेर, दिल्ली, राजघाट तथा कलकत्ता आदि नाम के कई

अच्छे-अच्छे गेट हैं। कलकत्ता गेट के बीच से होकर रेलवे लाइन गई है। इसी गेट से प्रवेश करके देवगण चाँदनी चौक पहुँचे।

अब वरुण ने ब्रह्मा आदि को जुमा मसजिद दिखलाया और कहा कि इतनी बड़ी मसजिद आज तक और कहीं नहीं बन पाई है। आगरा के ताजमहल से तो यह मसजिद नीची है, किन्तु दिल्ली की सभी इमारतों से ऊँची है। इसके निर्माण में दस लाख रुपयों का व्यय हुआ है। भारतवर्ष का धन-रत्न लूटकर मुसलमानों ने उसे इस प्रकार फूंका है।

अब वरुण ने सबको शाहजहाँ का प्रासाद और क़िला दिखलाया। उन्होंने बतलाया कि इसकी दीवार ढाई मील तक फैली हुई है और यह रक्तवर्ण की है। क़िले के भीतर जल ले जाने के लिए शाहजहाँ ने जो नहर खुदवाई थी वह आज भी बनी हुई है। इसके प्रवेशद्वार के पास नौबतख़ाना है, और उसके बाद दीवाने-आम है। इस दीवाने-आम में मयूर-सिंहासन पर शाहजहाँ का खुला दरबार लगा करता था। इस सिंहासन में नीचे से ऊपर तक बहुमूल्य मणियों तथा मोतियों की भरमार थी। इसकी शोभा देखने पर जान पड़ता था कि मानो यह हमारे कार्त्तिक से बलपूर्वक छीन लाया गया है। अन्त में इसे नादिरशाह अपहरण कर ले गया था।

नारायण—मुसलमान बादशाहों तथा स्त्रियों के स्वभाव में बहुत कुछ समानता मालुम होती है। स्त्रियों के हाथ में रुपया आया नहीं कि उन्होंने उसे कोई अच्छा कपड़ा या गहना ख़रीदने में ख़र्च कर दिया। ठीक उसी प्रकार मुसलमान बादशाहों के पास भी जब कभी कुछ अधिक रुपया इकट्ठा हो जाता, वे झट उसे कोई सिंहासन या मसजिद आदि बनवाने में ख़र्च कर दिया करते थे।

अब वरुण ने ब्रह्मा आदि को बादशाह का अन्तःपुर दिखलाया। उन्होंने कहा—मुसलमान बादशाह बेगमों को जनता की दृष्टि से छिपा रखने के लिए उन्हें बहुत ही क्लेश दिया करते थे। उनके रहने के

लिए उन्होंने छोटे-छोटे एकमंजिले घर बनवा रक्खे थे और उनमें खिड़कियाँ तक नहीं लगवाई थीं। परन्तु वर्त्तमान युग के बहुत-से बाबुओं का नियम इससे भिन्न और सर्वथा विपरीत है। वे लोग सड़क के किनारे पर बने हुए बहुत-सी खिड़कियों और दरवाज़ों से युक्त दो-दो, तीन-तीन मंजिल के मकानों में पत्नी को रखकर भी नहीं सन्तुष्ट हो पाते। वे समय-समय पर खुली गाड़ी पर बग़ल में वेश्या के वेश में बैठालकर उन्हें हवा खिला लाया करते हैं।

ब्रह्मा—वेद में लिखा है कि कलि की अन्तिम अवस्था में स्त्रियाँ स्वेच्छाचारिणी होकर जहाँ-तहाँ घूमती फिरेंगी। उसी का यह सूत्रपात है।

वरुण—उस ओर जो मकान देख रहे हैं उसमें बादशाह के संगमरमर के तीन स्नानागार हैं। उस घर में बहुत-से नल लगे हुए झरने भी दिखाई पड़ते हैं। इन तीनों स्नानागारों में से किसी में अधिक गरम, किसी में कम गरम और किसी में ठंडा जल रहा करता है। जल गरम करने के लिए प्रतिदिन सौ मन कोयला लगा करता था।

इन्द्र—तो यह कहो कि उनके मारे देश का झाड़-झंखाड़ तक नहीं बचने पाता था।

इसके बाद देवतागण चाँदनी चौक में पहुँचे। वहाँ उस समय एक घर में क़व्वाली हो रही थी। उन लोगों ने क़व्वालों का गीत कभी सुना नहीं था। परन्तु वह गीत हिन्दी में था, इससे उसका एक अक्षर भी देवताओं की समझ में न आया। वे लोग क़व्वालों का हिलना-डोलना और मुँह मटकाना देखकर बार-बार मुँह दबाने का प्रयत्न करने पर भी अपनी हँसी रोकने में समर्थ नहीं हो सके। लौटते समय उन लोगों ने गुड़गुड़ी का एक-एक नर्चा और बाक्स में लगा हुआ एक-एक आइना ख़रीद लिया। इतने में एक नहर देखकर पद्मयोनि ने वरुण से उसके सम्बन्ध में पूछ-ताछ की।

वरुण—इस नहर को अलीमर्दन नामक एक व्यक्ति ने खोदवाया था, इससे यह अलीमर्दन नहर कहलाती है। इस नहर के दोनों किनारे

सफ़ेद पत्थर से बँधे हुए हैं। यह नहर पाँच फ़ुट गहरी और तीन मील लम्बी है। इस पर कई पुल बने हुए हैं और उसके किनारे-किनारे धनिकवर्ग की सुन्दर-सुन्दर अट्टालिकायें हैं।

अलीमर्दन नहर के पास से चलकर ब्रह्मा आदि हज़ारीबाग़ में पहुँचे। तब वरुण ने कहा—देखो जनार्दन, इस स्थान पर मुहम्मदशाह नामक एक बादशाह की बेगम की क़ब्र है।

नारायण—जहाँ देखो वहीं क़ब्र ! दिल्ली में कितने भूतों और चुड़ैलों का अड्डा है, यह कहा नहीं जा सकता।

वरुण—मुहम्मदशाह के समय में नादिरशाह ने दिल्ली पर आक्रमण किया था। आजब जा और सईदख़ाँ नामक दो व्यक्ति उसे यहाँ ले आये थे। अन्त में नादिरशाह ने उन दोनों विश्वासघातकों को डाढ़ी-मूछ तथा सिर के बाल बनवाकर मुँह में कारिख लगवाकर नगर से निकलवा दिया था। अन्त में मारे घृणा और लज्जा के विष खाकर उन दोनों ने प्राणत्याग कर दिया था। नादिरशाह दिल्ली में राज्य करने के विचार से नहीं आया था। उसने पहले नगर-वासियों के ऊपर किसी प्रकार का अत्याचार भी नहीं किया। परन्तु एकाएक नगर में यह अफ़वाह फैल गई कि नादिरशाह की मृत्यु हो गई। इससे दिल्ली गेट से लेकर लाहौर गेट तक के आदमी बहुत उत्तेजित हो गये और नादिरशाह के दो-तीन आदमियों को मार डाला। इससे क्रोधान्ध होकर उसने भी कम से कम बीस हज़ार आदमियों के काम तमाम कर दिये। यह हत्याकाण्ड प्रातःकाल से लेकर दोपहर तक बराबर होता रहा; बच्चा-बूढ़ा कोई भी बचने नहीं पाया। अन्त में आग लगवाकर नगर का बहुत-सा अंश उसने जलवा दिया। मृत्यु की इस बिभीषिका से व्याकुल होकर मुहम्मदशाह रोते-रोते नादिरशाह के पास पहुँचा और उसके चरणों पर गिर पड़ा। उसकी अनुनय-विनय से नादिरशाह का क्रोध कुछ शान्त हुआ। तब वह मयूर-सिंहासन और कोहनूर हीरा लेकर चला गया।

ब्रह्मा--कोहनूर हीरा क्या है ?

वरुण--यह वही मणि है जिसे राजा सत्राजित ने सूर्य की आराधना करके प्राप्त की थी। बाद को उसी मणि की चोरी श्रीकृष्ण को लगी थी।

ब्रह्मा--वह मणि इन लोगों के हाथ में कैसे आगई ? आजकल वह कहाँ है ? बात यह है कि एक परिवार में वह अधिक समय तक रह न सकेगी।

वरुण--मिरजुआ नामक एक सेनापति ने वह मणि गोलकुण्डा से लाकर शाहजहाँ को भेंट की थी। बाद को यहाँ से उसे नादिरशाह ले गया। नादिरशाह के बाद मुहम्मदशाह और उसके बेटे शाहशुजा के पास वह रही। शाहशुजा के समय में उसे रणजीतसिंह ले आये। अब वह मणि इँग्लैंड के राजमुकुट में सुशोभित है। आपका कथन है कि वह अधिक समय तक एक परिवार में नहीं रहती, कदाचित् इसी लिए अब यह काट-कूट डाली गई है, क्योंकि अँगरेज़ लोग तो बड़े ही दूरदर्शी हैं।

इसके बाद सब लोग ग़ाज़ीउद्दीन कालेज देखने के लिए चले। सड़क के किनारे पर एक टूटी हुई मसजिद थी। किसी मुसलमान ने उसके द्वार पर एक मुर्ग़ी का गला काटकर फेंक दिया। यन्त्रणा से छटपटाती हुई वह मुर्ग़ी आकर पितामह के चरणों के पास पड़ी। उसे देखकर पितामह स्तम्भित हो गये। श्री विष्णु श्री विष्णु कहते हुए वे हटकर ज़रा कुछ दूर खड़े हुए।

नारायण--विधाता, आपकी रची हुई सृष्टि का एक जीव आपकी शरण में आया है, इसकी रक्षा कीजिए।

विधाता--उसके भाग्य में जो था, वह हुआ। भाग्य में जो कुछ लिखा होता है, उसे कौन मेट सकता है ?

अब वरुण ने सबको ग़ाज़ीउद्दीन कालेज दिखलाया। उन्होंने कहा--महाराष्ट्रों ने यहाँ उपद्रव किया है। यह सोचकर कि क़ब्र में

रुपया रहता है, उन लोगों ने बहुत-सी अच्छी-अच्छी क़ब्रें खोद डालीं। रुहेलों ने भी दिल्ली में कम उपद्रव नहीं किया। नादिरशाह यहाँ का हीरा-मोती लूट ले गया। महाराष्ट्र लोग सोना-चाँदी ढो ले गये। रुहेलों को जब यहाँ कुछ नहीं मिला तब वे चहारदीवारी के अच्छे-अच्छे पत्थर ही खोदकर उठा ले गये।

अब वरुण देवताओं को नई दिल्ली दिखलाने के लिए चले। वहाँ जाकर वाइसराय-भवन, कौंसिल-भवन तथा अँगरेज़ी सरकार के समय के अन्यान्य महत्त्वपूर्ण भवनों तथा कार्य्यालयों और लोकोपयोगी संस्थाओं का अवलोकन किया। बाद को वे सब स्टेशन की ओर चले। कुछ दूर तक चलने के बाद ब्रह्मा ने कुछ मुल्लों को काँछ खोले हुए खड़े-खड़े चिल्लाते देखा। ब्रह्मा की दृष्टि में यह बात बिलकुल नई थी। इससे हँसते-हँसते उन्होंने वरुण से पूछा कि ये लोग क्या कर रहे हैं?

वरुण—ये लोग मुल्ला हैं। ये ईश्वर को पुकार रहे हैं।

ब्रह्मा—किन्तु ये काँछ क्यों खोले हुए हैं?

वरुण—ऐसा किये बिना तो वे प्रसन्न ही नहीं होते।

इतने में नारायण ने वरुण के कान के पास मुँह ले जाकर कहा—दिल्ली की वेश्याओं की बड़ी प्रशंसा सुनी थी। किन्तु बरामदे में बैठी-बैठी इस तरह तम्बाकू पी रही थीं, कि देखकर मुझे घृणा हो गई।

इस तरह गप-शप करते-करते देवगण स्टेशन पहुँच गये। इधर गाड़ी का समय भी हो गया था। वरुण ने कहा—नारायण, जल्दी से रुपये निकालो, टिकट ले आऊँ। परन्तु नारायण ने थैली खोलने में विलम्ब कर दी। इससे क्रुद्ध होकर वरुण ने कहा—अब मुझसे न हो सकेगा, तुम्हीं जाकर टिकट ख़रीद लाओ।

"मानो यह कोई बहुत बड़ा काम है," यह कहते हुए नारायण टिकटघर के पास गये। वहाँ बहुत-से मुसलमान भीड़ लगाये खड़े थे। नारायण इन सब लम्बी डाढ़ीवालों के मुँह के पास मुँह ले जाकर

जैसे ही बोले--चार टिकट दे दो, वैसे ही वा-वा करते हुए नाक में कपड़ा ठूँसकर किसी प्रकार भाग आये। उन्हें इस तरह व्याकुल-भाव से भागकर आते देखकर ब्रह्मा उनकी ओर बढ़े और बोले--कहो नारायण, क्या बात है?

नारायण--बाप रे! लहसुन-प्याज खा-खाकर इस तरह डकर रहे हैं ये लोग कि तबीअत एकदम से घबरा उठी। इतने जोर की क्रँ होने जा रही थी कि मानो 'छट्ठी' तक का दूध गिर जायगा।

यह देखकर हँसते-हँसते वरुण टिकटघर की ओर बढ़े और किसी प्रकार हाथरस के लिए चार टिकट लेकर लौट आये। इतने में गाड़ी भी आगई और सबके सब एक डिब्बे में बैठ गये। गाड़ी वहाँ से चलकर अलीगढ़ पहुँची।

वरुण ने देवताओं को अलीगढ़ का परिचय देते हुए कहा--पहले यहाँ कोल नामक एक असभ्य जाति निवास किया करती थी। इस जाति के लोग बड़े जबर्दस्त डाकू थे। अपने जामाता कंस के निधन के समाचार से क्रुद्ध होकर राजा जरासन्ध ने जब कृष्ण के ऊपर आक्रमण करने के लिए धावा बोला था तब यहीं पर उसने अपनी शिविर बनाई थी। बहुत-सी सुविशाल अट्टालिकाओं के अतिरिक्त यहाँ मिट्टी का एक बहुत ही प्रसिद्ध दुर्ग भी था। सन् १८०३ ई० में लार्ड लेक ने उस दुर्ग पर अधिकार किया था। नगर से दो मील की दूरी पर उस दुर्ग का ध्वंसावशेष आज भी वर्त्तमान है। मुस्लिम विश्वविद्यालय अलीगढ़ की एक महत्त्वपूर्ण संस्था है।

अलीगढ़ से छूटकर गाड़ी हाथरस पहुँची। वहाँ से उतरकर देवगण ब्रांच लाइन की गाड़ी में विराजमान हुए। उस गाड़ी की गति बहुत कुछ मन्द थी। अस्तु, क्रमशः वे लोग मथुरा स्टेशन पर पहुँच गये। टिकट देकर देवगण फाटक से बाहर निकले। इतने में दल के दल चौबे पण्डों ने आकर इन सबको मधुमक्खी की तरह घेर लिया। उनमें से हर एक के मुँह में यही एक बात थी कि

मेरे साथ चलो बाबू। परन्तु इतने ही से शान्ति नहीं थी। वे लोग हाथ पकड़-पकड़कर अपनी-अपनी ओर घसीटने भी लगे। देवता-गण किसके यजमान हैं, इस विषय में पण्डों में बड़ा झमेला खड़ा हो गया। इतने में एक पण्डा ने कहा बाबू, आपका निवास कहाँ है? आपके पिता का नाम? इसके उत्तर में जरा-सा कुछ सोचकर विधाता ने कहा—मेरा निवास शून्य में है और मेरे पिता का नाम यथानाम-चन्द्र था। यह सुनकर वह आदमी बोल उठा—हाँ, हाँ, एक बार यथानामचन्द्र महोदय शून्य से दर्शन करने के लिए वृन्दावन आये थे। उस समय मैं बहुत छोटा था। मेरे पितामह ने उन्हें दर्शन कराया था। यह कहकर उसने एक बहुत पुरानी बही दिखलाई और वृद्ध विधाता का हाथ पकड़कर घसीटता हुआ वह उतावली के साथ चला। विवश होकर अन्य देवताओं को भी पीछे-पीछे चलना पड़ा। पुल के ऊपर से ही मथुरा का दृश्य देखकर देवगण मुग्ध हो गये।

मथुरा

मथुरा में प्रवेश करने पर वरुण ने कहा—देखिए पितामह, पहले इस स्थान पर बहुत ही सघन वन था। उस समय दैत्य लोग यहाँ पर राज्य किया करते थे। वे राम-लक्ष्मण के समकालीन थे। दैत्य-वंश का अन्तिम राजा कंस था। उसके बाद यहाँ श्रीकृष्ण ने राज्य किया था।

ब्रह्मा—वृक्षों और लताओं से परिपूर्ण सामने जो एक टीला दिखाई पड़ रहा है वह क्या है?

वरुण—वह मिट्टी का पहाड़ है। यहाँ इस प्रकार के मिट्टी के पहाड़ों का कोई वैसा अभाव नहीं है। यह जो आप देख रहे हैं, कंसटीला कहलाता है। उसी के ऊपर श्रीकृष्ण ने कंस का वध किया था। यह सुनकर सब लोग उसी ओर बढ़े।

थोड़ी दूर तक चलने के बाद इन्द्र ने कहा--वरुण, वह मन्दिर और तालाब किसका है?

वरुण--वह मन्दिर देवकी का कारागार है। कंस ने जब नारद से सुना कि देवकी के आठवें गर्भ से जो सन्तान उत्पन्न होगी, उसी के हाथ से तुम्हारा वध होगा, तब उसने इसी स्थान पर वसुदेव और देवकी की छाती पर पत्थर रखवाकर क़ैद कर लिया था। यह जो पत्थरों का स्तूप-सा दिखाई पड़ रहा है, वहीं पर कारागार था। मुसलमानों ने उसे तोड़कर वहाँ पर मसजिद बना ली है। आप यह जो तालाब देख रहे हैं, इसी में देवकी ने सूतिका-स्नान किया था। ग्वालियर के महाराज ने इस तालाब में आवश्यक सुधार करके इसे पक्का करवा दिया है। इस टूटे हुए घर में देवकी और श्रीकृष्ण की मूर्त्ति है।

इन्द्र--दैत्यों के लिए सब कुछ सम्भव था।

ब्रह्मा--तुम्हारी यह बात न्याय-विरुद्ध है। देवता ही लोग क्यों नहीं सब कुछ कर सकते? वृत्र-संहार के समय तुम्हीं ने निरपराध दधीचि मुनि की हड्डियाँ क्यों ले ली थीं? कंस ने भी इसी तरह आत्म-रक्षा के लिए जो कुछ कार्य्य किया था, उसके लिए उसको न्यायतः दोषी नहीं ठहराया जा सकता। अच्छा, अब समय हो गया है, इसलिए चलकर स्नान-भोजन की व्यवस्था करनी चाहिए।

अब देवतागण यमुना जी के तट पर पहुँचे। वरुण ने कहा--यहीं यमुना पार करके वसुदेव श्रीकृष्ण को गोकुल में रख आये थे।

ब्रह्मा--आहा! कितने उत्तम-उत्तम बँधे हुए घाट दोनों तटों पर हैं।

वरुण--उधर उस पार जो घाट दिखाई पड़ रहा है, वहीं पर पूतना जलाई गई थी। यह पूतना राक्षसी श्रीकृष्ण को मार डालने के विचार से स्तन में विष लपेटकर उन्हें दूध पिलाने के लिए वृन्दावन आई थी। श्रीकृष्ण ने भी इतने जोर से उसका स्तन खींचा कि उसी के प्राण-

पखेरू उड़ गये। यह घाट, जिस पर हम लोग स्नान कर रहे हैं, विश्राम-घाट कहलाता है। कंस का वध करने के बाद श्रीकृष्ण और बलराम ने आकर इसी घाट पर विश्राम किया था। साँझ होने के बाद यहाँ आकर व्रजवासी लोग जब यमुना जी की आरती करने लगते हैं तब घाट की शोभा देखते ही बनती है।

नारायण—यहाँ तो जल में कछुए बहुत अधिक हैं। स्नान किस तरह किया जाय? मैंने सुना है कि कछुआ जब किसी को पकड़ लेता है तब मेघ की गरजना सुने बिना वह नहीं छोड़ता।

इन्द्र—तुम आनन्दपूर्वक स्नान करो, यदि कहीं किसी कछुए ने पकड़ा तो बहुत-से मेघ एकत्र कर दूँगा मैं।

वरुण—परन्तु जिस स्थान पर वह पकड़ेगा, वहाँ ख़ून जो बहने लगेगा?

इन्द्र—उसके लिए चिन्ता करने की कौन-सी बात है? ऊपर बहुत-सा पत्थर का कोयला पड़ा हुआ है। उसी को लेकर ज़रा-सा रगड़ देना, तुरन्त बन्द हो जायगा।

वरुण—अच्छा पितामह, भला वृन्दावन में इतने कछुए क्यों हैं?

ब्रह्मा—तीर्थ करने के अभिप्राय से यहाँ आकर जो लोग पाप करते हैं, वे ही कच्छप योनि को प्राप्त होते हैं।

देवगण ने यमुना जी के जल में अँगौछा भिगो-भिगोकर उसी से शरीर को पोंछकर स्नान समाप्त कर लिया। भोजन से निवृत्त होने पर दो-तीन बजे इक्के पर बैठकर वे लोग वृन्दावन को चले। जितनी तेजी से उनके इक्के दौड़ रहे थे, उतनी ही तेजी से अस्सी-नब्बे भिक्षार्थी बालकों का भी एक दल बाबू जी एक पैसा दे दो, मालिक एक पैसा दे दो, यह कहता हुआ दौड़ता हुआ इक्कों के साथ ही साथ चला। वृन्दावन के आधे रास्ते पर जब वे लोग पहुँच गये तब ब्रह्मा ने कहा—नारायण दो-चार पैसे दे दो इन लोगों को।

नारायण--यही न देख लिया जाय कि ये पाजी लोग कितनी दूर तक दौड़ सकते हैं ?

ब्रह्मा--छिः नारायण तुम इतने निष्ठुर क्यों होते जा रहे हो ? यदि दौड़ते-दौड़ते ये लोग मर ही गये, तब तो इस पाप का प्रायश्चित्त तुम्हें ही भोगना पड़ेगा।

दूर से ही उन लोगों को सेठों के ठाकुरद्वारे के ऊपर बने हुए सोने का ताड़वृक्ष दिखाई पड़ा। ब्रह्मा के पूछने पर वरुण ने मथुरा के सेठों के धन-विभव का हाल बताया और कहा कि मथुरा की सड़क के पास ही इन्द्र-भवन के समान जो मकान दिखाई पड़ रहा है, वह इन सेठों का ही है।

वृन्दावन

वृन्दावन पहुँचकर देवगण ने गोविन्द जी के मन्दिर के समीप वर्त्तमान बाबा चैतन्यदास जी के कुञ्ज में स्थान ग्रहण किया। बाबा चैतन्यदास की अवस्था सत्तर-पचहत्तर वर्ष की थी। उनकी लम्बी दाढ़ी सन की तरह बिलकुल सफ़ेद थी। बाबा जी वहाँ साठ-सत्तर सेवा-दासियों के साथ विराजमान थे। उनसे बातचीत होने पर देवगण को बहुत ही असन्तोष हुआ। बात यह थी कि वे थे तो वैष्णव, किन्तु भागवत के सम्बन्ध का एक भी विषय उन्हें मालूम नहीं था। बातचीत भी इतनी ख़राब थी कि सुनने पर ऐसा जान पड़ता, मानो यह व्यक्ति पहले कोई नीच जाति का डाकू था। पकड़े जाने के भय से यह वृन्दावन भाग आया है और वेश बदलकर बाबा जी बन गया है। देवराज ने कहा--क्या बाबा जी को चैतन्यदेव के सम्बन्ध की कुछ बातें मालूम हैं ?

बाबा जी ने कहा--मालूम क्यों नहीं हैं ? चैतन्यदेव माता शची के बेटे थे। संन्यासी होकर जब वे नवद्वीप से भाग आये तब

उन्होंने चाक़दा के घाट पर एक मछुए से चार मछलियाँ माँगीं। परन्तु धीवर ने मछलियाँ दीं नहीं। इसी पाप से जब वह नदी में जाल लगाने गया तब उसे एक घड़ियाल खा गया।

बाबा जी के मुँह से चैतन्य महाप्रभु के सम्बन्ध का यह वृत्तान्त सुनकर देवगण बहुत प्रसन्न हुए और वे नगर में भ्रमण करने के लिए निकले। वरुण ने देवगण को गोविन्द जी का पुराना मन्दिर दिखलाया। यह मन्दिर नगर के और सब मन्दिरों से अधिक ऊँचा है। इस मन्दिर की चूड़ा दिल्ली से दिखाई पड़ा करती थी, इसलिए सम्राट् औरंगज़ेब ने उसे तोड़वा दिया था। आजकल देवमूर्त्तियाँ उस ओर बने हुए नये मन्दिर में हैं।

ब्रह्मा ने कहा—आहा! यह कितना बड़ा अत्याचार है! यवनों ने प्रायः सर्वत्र ही इस प्रकार का नृशंसतापूर्ण कार्य किया था। यवन लोगों ने यदि और कुछ दिनों तक भारतवर्ष पर आधिपत्य किया होता, तो निस्सन्देह हिन्दुओं का नाम तक लुप्त हो जाता।

मन्दिर के द्वार पर आठ आने भेंट देकर देवगण ने भीतर प्रवेश किया। गोविन्द जी राधा और ललिता के साथ मन्दिर में विराजमान हो रहे हैं। दिन भर में समय-समय पर कई बार इनका वेश बदल दिया जाया करता है। परन्तु वंशी सदा ही इनके हाथ में रहा करती है।

वरुण—महमूद के भय से यह मूर्त्ति गर्त्त में छिप गई थी। बलराम आचार्य्य ने इसे निकाला है। अन्त में बहुत-से उपद्रव सहन करने के उपरान्त औरंगज़ेब के भय से यह मूर्त्ति द्वारका भागी। यह वही मूर्त्ति आज भी वर्त्तमान है और द्वारकानाथ के नाम से प्रसिद्ध है। जिस मन्दिर में यह मूर्त्ति है, वह मान-मन्दिर कहलाता है। पृथिवी का यह बहुत बड़ा और विख्यात मन्दिर है। गोविन्द जी आज भी जयपुर के महाराज की देख-रेख में हैं। श्रीकृष्ण मक्खन के अत्यधिक प्रेमी थे, यहाँ तक कि समय-समय पर वे छीकों पर रक्खी

हुई मटकियों से चुराकर मक्खन खाया करते थे, इसलिए उनकी सेवा में मक्खन अधिक मात्रा में समर्पित किया जाता है। ये यदुवंश के पूर्व-पुरुष हैं, इसलिए राजपूत लोग इनके प्रति बहुत ही भक्ति करते हैं। जयपुर-नरेश ने इनकी सेवा के लिए वृन्दावन की आय का एक तृतीयांश दान कर दिया है। इनके भक्त वैरागी हैं।

ब्रह्मा—वैरागी कैसे होते हैं ?

वरुण—इनका माथा ऊन की तरह मूँड़ा रहता है। मध्यभाग में तरबूज़ की ढिपुनी की तरह की चूँदी होती है। हाथ में ये कमण्डलु लिये रहते हैं, सारे शरीर में राम-नाम का तिलक लगाये रहते हैं, कटिदेश में कौपीन धारण किये रहते हैं और गले में तुलसी की माला पहने रहते हैं। ये बातें हो ही रही थीं कि थोड़े-से वैरागी "जय राधा" कहते हुए चले गये। देवगण उन्हें देखकर हँसने लगे। क्रमशः साँझ हो गई। देवगण नगर में भ्रमण करने के निमित्त अब नहीं गये। स्थान पर ही बैठे-बैठे लोग सुख-दुःख की बहुत-सी बातें करने लगे। इतने में पद्मयोनि ने अफ़ीम का डिब्बा खोला। उसमें से थोड़ी-सी अफ़ीम निकालकर उन्होंने उसे जम्हुआई लेकर नर्म कर लिया। तब गोली बनाते-बनाते उन्होंने कहा—सुनता हूँ कि पटना में अफ़ीम सस्ती मिलती है। वहाँ से थोड़ी-सी ख़रीद लेनी होगी। यह कहकर उन्होंने गोली मुँह में डाल ली और निगल गये। तब उन्होंने कहा—देखो नारायण इतना दूध मैं पीता हूँ किन्तु मङ्गला (ब्रह्मा की गाय का नाम) के दूध की-सी मिठास इसमें नहीं आती। आजकल वह ढाई सेर के हिसाब से दूध दे रही है।

नारायण—मङ्गला का एक बच्चा आपने मुझे देने को कहा था न ?

ब्रह्मा—हाँ, दूँगा, किन्तु अभी नहीं। इस बार का बच्चा भरणी को देना होगा। वह बहुत दिनों से माँग रही है।

इसी प्रकार बातें करते-करते रात बीत गई। प्रातःकाल उठकर उन लोगों ने देखा तो एक दुःखिनी बंगालिन आकर उनका घर-द्वार

साफ़ कर रही थी। उसे देखकर पितामह ने कहा——मा, तुम कौन हो ? हमारा घर-द्वार तुम किसलिए साफ़ कर रही हो ?

बंगालिन ने उत्तर दिया——बाबा, मैं एक दुःखिनी वङ्ग-रमणी हूँ। किसी समय मुझे स्वामी-पुत्र तथा धन-सम्पत्ति आदि किसी वस्तु का अभाव नहीं था। परन्तु विधाता मेरे पीछे पड़ गये। स्वामी-पुत्र से मैं वञ्चित हो गई। सम्पत्ति मेरे पास जो थी उसे पट्टीदारों ने छीन लिया। आजकल मैं वृन्दावन में निवास कर रही हूँ। जो महानुभाव यहाँ तीर्थ-यात्रा के निमित्त आया करते हैं, उनका काम-काज कर दिया करती हूँ। स्वेच्छा से वे लोग जो कुछ पैसा-दो पैसा दे देते हैं उसी से मैं अपनी जीविका चलाती हूँ।

इतने में एक बाबा जी जोर से रोते-रोते आये और जिस कुञ्ज में देवगण ठहरे हुए थे, उसके स्वामी जो बाबा जी थे, उनसे कहने लगे——बाबा जी शीघ्रतापूर्वक उठकर बाहर आइए, मेरा सर्वनाश हो गया।

यह सुनकर बाबा चैतन्यदास जी ने विस्मितभाव से आकर कहा——क्या हुआ है ?

"कलकत्ता से कुछ लौंडे यात्री आये थे न ?"

"हाँ, आये तो थे।"

"(भर्राई हुई आवाज से) मेरी छोटी सेवादासी को लेकर वे लोग भाग गये।"

"गोविन्द ! गोविन्द ! तो अब क्या किया जाय ?"

"अभी वे अधिक दूर न गये होंगे, चलो दल-बल लेकर चलें और छीन लावें।"

"गोविन्द की जो इच्छा थी, वह हुआ। मैं तो अब उनके पीछे दौड़ना आवश्यक नहीं समझता हूँ।"

बाबा चैतन्यदास जी की यह बात सुनकर दूसरा बाबा कुछ शान्त हुआ अवश्य, किन्तु छोटी सेवादासी का रूप-गुण तथा अवस्था आदि की

उसे जितनी ही याद आती उतना ही वह आँसुओं से भूमि को भिगोता जाता।

यमुना जी में स्नान करके देवगण नगर में भ्रमण करने के लिए चले। बाबा चैतन्यदास जी की सेवा-दासियों का दल भी भिक्षा के लिए निकल पड़ा।

ब्रह्मा---वृन्दावन में जो इतने मन्दिर हैं, वे किसके हैं?

वरुण---यहाँ पर जयपुर, सिन्धिया, होल्कर तथा वर्द्धमान आदि स्थानों के महाराजाओं तथा बहुत-से जमींदारों ने मन्दिर बनवाकर उनकी प्रतिष्ठा की है। प्रत्येक मन्दिर में सौ रुपये से दस रुपये तक प्रतिदिन की पूजा का व्यय निश्चित हुआ है। बहुत-से यात्री तो यहाँ प्रसाद खाते-खाते ही पेट भर लेते हैं और इस तरह उनका आजन्म निर्वाह हो जाता है। इस प्रकार बातें करते-करते वे लोग गोपीनाथ के मन्दिर के द्वार पर पहुँच गये। द्वार पर आठ आने भेंट देकर उन सबने भीतर प्रवेश किया।

वरुण---श्रीकृष्ण गोपियों के स्वामी थे, इसलिए उनका नाम गोपीनाथ पड़ा है। जिस वेश में गौओं के बीच में जाकर वे कालिन्दी-तट के वनों में श्री राधिका का हाथ पकड़े हुए घूमा करते थे, इस मन्दिर में उनकी उसी वेश की मूर्त्ति स्थापित है। कालिन्दी-तट के वे वन आज भी वर्त्तमान हैं, किन्तु दुःख का विषय है कि वंशी नीरव है।

गोपीनाथ को देखकर देवगण केशिघाट पर जाकर उपस्थित हुए।

वरुण---श्रीकृष्ण ने इस घाट पर केशि नामक दैत्य का संहार किया था। इसी घाट पर वे नाव चलाया करते थे।

इन्द्र---वृन्दावन में जन्म-ग्रहण करके नारायण ने अनेक प्रकार की क्रीड़ायें की थीं।

वरुण---इसमें उनका दोष नहीं है। यह तो कुसंग का फल है। चरवाहों के साथ में पड़कर वे खराब हो गये थे, नहीं तो उनकी बुद्धि बड़ी अच्छी थी। आजकल की तरह यदि उनके समय में भी गाँव-गाँव

में पाठशालायें होतीं तो वे खूब पढ़-लिखकर मथुरा में राज्य कर सकते थे। अस्तु, जो बात बीत गई, उसके लिए पश्चात्ताप करना निरर्थक है। उधर जो घाट देख रहे हैं, उसी पर श्रीकृष्ण ने बकासुर का वध किया था। इस वृक्ष को लोग चीर-हरण का वृक्ष कहा करते हैं।

इन्द्र—द्वापर का वृक्ष इस समय जब इतना छोटा है, तब तो उस समय शायद वह अंकुर के ही रूप में रहा होगा !

ब्रह्मा—यह भी सम्भव है कि यह वृक्ष इतने से बढ़ ही न सकता होगा। जैसे तब था, वैसे ही अब भी है।

वरुण—जी नहीं। असली वृक्ष यह नहीं है। यह नक़ली वृक्ष है। पैसा कमाने के लिए पण्डा लोग यात्रियों को इसे दिखा दिया करते हैं।

ब्रह्मा—चीर-हरण क्या है ?

नारायण ने आँख के इशारे से वरुण को बतलाने से रोक दिया।

वरुण—ये ठीक स्नान के समय इस वृक्ष पर चढ़कर पत्तियों की आड़ में छिपे रहते। गोपियाँ आकर नंगी हो जातीं और घाट पर वस्त्र रखकर स्नान करने के लिए जल में प्रवेश करतीं। उस समय ये धीरे-धीरे उतरकर सारे कपड़े पेड़ पर उठा ले जाते। वृक्ष की डालियों पर उन सब कपड़ों को टाँगकर बंशी बजाते हुए ये अपनी बहादुरी का विज्ञापन किया करते थे। अन्त में उन बेचारियों के बहुत ही अनुनय-विनय करने के बाद उनके वस्त्र देकर ये हँसते-हँसते घर जाया करते। उस ओर देखिए, वह कालीदह है। उस घाट पर श्रीकृष्ण ने कालिया नामक नाग का दमन किया था। यह जो कदम्ब का वृक्ष आप देख रहे हैं, उसका नाम है कालिकदम्ब। उसी के ऊपर से जल में कूदकर श्रीकृष्ण ने नाग को नाथ लिया था। यहाँ प्रतिवर्ष एक मेला लगा करता है। उस समय बहुत-से यात्री आकर मेले में योगदान किया करते हैं।

देवगण वहाँ से आगे बढ़े। चलते-चलते एक स्थान पर पहुँचकर वरुण ने कहा—पितामह आपको स्मरण होगा कि एक बार श्रीकृष्ण

को छकाने के लिए आप पक्षी के वेश में आये और यहाँ से बहुत-सी गौवों, बछड़ों तथा बालकों को उठा ले गये। यह देखकर श्रीकृष्ण ने ठीक उसी प्रकार की गौओं, बछड़ों तथा बालकों की सृष्टि कर ली। श्रीकृष्ण की करामात देखने के बाद आपने उन सभी गौओं, बछड़ों तथा बालकों को लौटाल दिया। उस समय से इस स्थान का नाम ब्रह्मकुण्ड हो गया है। यहाँ हरहरि की मूर्त्ति की ही तरह की एक मूर्ति स्थापित है जिसे लोग गोपेश्वर कहा करते हैं। विख्यात हरिदास गोस्वामी के समाज तथा समाधि का भी स्थान यही है। एक बार बादशाह अकबर नौका पर बैठा हुआ यमुना की सैर कर रहा था। दूर से उसने उक्त गोस्वामी जी का सङ्गीत सुन लिया और गुप्त वेश में उनके सामने पहुँचा। अपना परिचय देकर उसने उन्हें बहुत-सा धन देने का लोभ दिखाया और दिल्ली चलने का आग्रह किया। परन्तु गोस्वामी जी इस पर तैयार नहीं हुए। उन्होंने अकबर को समझाया कि धन एक बहुत ही निरर्थक वस्तु है और इसका लोभ मुझे प्रभावित नहीं कर सकता। अन्त में गोस्वामी जी ने तानसेन नामक अपने एक शिष्य को अकबर के साथ कर दिया। तानसेन पटना का निवासी था और उस समय उसकी अवस्था उन्नीस-बीस वर्ष की थी। दिल्ली में जाकर तानसेन ने मुसलमान-धर्म ग्रहण कर लिया।

इसके बाद सब लोग जाकर पुलिन में पहुँचे। पद्मयोनि ने पूछा—भला श्रीकृष्ण ने यहाँ कौन-सी लीला की थी ?

वरुण—यहाँ वे गोपियों के साथ केलि किया करते थे।

अब देवगण निधुवन देखने के लिए चले। वहाँ पहुँचने पर वरुण ने कहा—इस वन में आकर श्रीकृष्ण वन के वृक्षों से फूल तोड़कर माला गूँथते और उसे गले में डालकर कदम्ब के वृक्ष पर चढ़ जाते। उसी पर से पैर हिला-हिलाकर वे वंशी बजाते। वंशी का शब्द सुनते ही व्रजनारियाँ जल भरने के बहाने से आकर उनसे मिल जाया करतीं। इसी वन में श्रीकृष्ण राधिका को राजा बनाकर स्वयं कोतवाल

बने थे। यह जो तालाब दिखाई पड़ रहा है, उसे लोग ललिता-कुण्ड कहते हैं।

इतने में कुछ बन्दर आ पहुँचे। उन सबने देवगण के हाथ से जोर से खींचकर गुड़गुड़ी के नर्चे छीन लिये और पास ही के एक बरगद के वृक्ष पर चढ़ गये। पितामह 'तू-तू' करके कुत्ते लुहलुहाये और बन्दरों को मारने दौड़े। इससे क्रोध में आकर नर्चों को बन्दरों ने नाख़ून से खण्ड-खण्ड करके नीचे फेंक दिया और वे दाँत किट-किटाने लगे।

ब्रह्मा ने कहा—आहा, ऐसे अच्छे-अच्छे नर्चे थे, एकदम से नष्ट कर डाला इन दुष्टों ने। बाँध-बूँधकर भी काम में ले आने के योग्य न रह गये ये। घर पहुँचने पर फ़र्सी में लगाकर यदि एक चिलम भी बढ़िया तम्बाकू पी लेते तो इतना अफ़सोस न होता। निरर्थक ही हम गुड़गुड़ी ख़रीदने के विचार से इन नर्चों को हाथ में लगाये आये थे।

वरुण—इन सबको मारने का उद्योग करके क्रुद्ध कर देना उचित नहीं था। कुछ खाने को दे दिया जाता तो ये अपने आप लाकर दे जाते। वृन्दावन में बन्दरों का बड़ा उत्पात है। माधव जी सिन्धिया इन सब बन्दरों की सेवा के लिए बहुत-सा रुपया जमा कर गये हैं। यहाँ कोई बन्दरों को तंग नहीं करता।

इन्द्र—तुम्हारे ही मुँह से तो सुना था कि अँगरेज़ लोग शिकार के बड़े प्रेमी होते हैं। परन्तु ये तीर्थ के बन्दर हैं, शायद यही सोचकर वे लोग इनकी हत्या नहीं करते।

ब्रह्मा—बन्दर का मांस तो वे खाते नहीं, मारकर ही क्या करेंगे?

वरुण—जी नहीं। पहले मथुरा से दल के दल राजपुरुष यहाँ आकर बन्दर, मयूर और हिरण का शिकार किया करते थे। राजा राधाकान्तदेव बहादुर नामक एक बंगाली सज्जन ने दरख़्वास्त देकर यहाँ बन्दर मारने की मुमानियत करवा दी है। उन्होंने यहाँ मन्दिर आदि भी बनवाये हैं।

इन्द्र——वरुण, उधर जो बहुत विशाल मन्दिर दिखाई पड़ रहा है, उसकी स्थापना किसने की है ?

वरुण——उस मन्दिर की प्रतिष्ठा भरतपुर के महाराज ने की है। वृन्दावन का यह सबसे बड़ा मन्दिर है। मन्दिर के समीप रूप गोस्वामी का आश्रम है।

इन्द्र——मन्दिर में मूर्त्ति कौन-सी है ?

वरुण——गोविन्द-महल में गोविन्द हैं! ये वन में छिपे हुए थे। गौएँ प्रतिदिन जाकर उन्हें दूध पिला आया करती थीं। अन्त में स्वप्न देखकर रूप-सनातन ने देवता को निकाला।

यहाँ से देवगण मदनमोहन देखने गये और वहाँ उपस्थित होकर वरुण ने कहा——कुब्जा इसी मूर्त्ति की पूजा किया करती थी। मथुरा का ध्वंस होने पर यह मूर्त्ति भी अदृश्य हो गई। रूप-सनातन ने एक चौबाइन के घर से इन्हें निकाला था। चौबाइन ने देव-मूर्त्ति को खिलौना समझकर अपने लड़के को खेलने के लिए दे रक्खा था। नौका जब चट्टान में अटक जाती है, तब मदनमोहन की पूजा करने की मनौती कर देने पर जल में फिर तैरने लगती है। इस कारण सौदागरों ने इनका यह मन्दिर तथा धर्मशाला बनवा दिया है और मन्दिर में बहुत-सी सम्पत्ति भी लगा दी है।

ब्रह्मा——रूप-सनातन कौन थे ?

वरुण——रूप और सनातन, ये दोनों भाई थे। पहले ये मुसलमान थे। बाद को चैतन्यदेव ने इन्हें वैष्णव-धर्म में दीक्षित कर लिया। तब से इनकी उपाधि रूप-गोस्वामी की हुई। वृन्दावन में इनका समाज बहुत बड़ा और विख्यात है। इनके समाज के समीप ही चैतन्यदेव का पद-चिह्न आज भी देखने में आता है।

ब्रह्मा——रूप-गोस्वामी को संसार से वैराग्य हो जाने का कारण क्या है ?

वरुण——कहा जाता है कि रूप नवाब के दरबार में कार्य किया

करते थे। एक दिन बरसात की अँधेरी रात में उनके मालिक ने उन्हें बुलवा भेजा। पानी में भीगते हुए कीचड़ में चलते-चलते जिस समय वे नवाब के पास जा रहे थे, उस समय एक मेहतर और मेहतरानी अपने कुटीर में बैठे हुए बातें कर रहे थे। मेहतरानी ने मेहतर से पूछा—भला ऐसे अँधेरे में कीचड़ में छपछप करता हुआ कौन चला जा रहा है ? इसके उत्तर में मेहतर ने कहा—कुत्ता होगा। मेहतरानी ने कहा—नहीं, ऐसे अँधेरे में कुत्ता नहीं निकल सकता। यह अवश्य कोई नौकर है। बात यह है कि कुत्ते को भी थोड़ी-सी स्वाधीनता है। वह इच्छानुसार कार्य कर सकता है। परन्तु बेचारे नौकरों के भाग्य में यह स्वाधीनता नहीं बदी है।

मेहतरानी की इस बात से रूप-गोस्वामी को बड़ी आत्म-ग्लानि हुई। वे सोचने लगे कि सचमुच मेरा यह जीवन कुत्ते के जीवन से भी अधम है। अन्त में घर-गृहस्थी आदि का परित्याग करके वे वैष्णव हो गये।

देवगण वहाँ से निकुंज वन की ओर चले। वहाँ पहुँचकर वरुण ने कहा—इसी निकुंज वन में श्रीकृष्ण राधिका को वामभाग में बैठाल कर आनन्द में मग्न होकर गाया करते थे।

ब्रह्मा—वह छोटा-सा कमरा कैसा बना हुआ है ? उसमें एक पलँग भी बिछा हुआ है।

वरुण—इस पलँग पर प्रतिदिन फूलों की शय्या लगा दी जाती है। सवेरे देखने पर जान पड़ता है कि मानो कोई व्यक्ति इस शय्या पर सोया हुआ था। ऐसा क्यों होता है, रात्रि में आकर यह देखने का साहस कोई नहीं करता। एक बार एक चौबे जी यह देखने के ही लिए रात भर यहाँ पर बैठे रहे, किन्तु सवेरे देखने में आया कि वे गूँगे हो गये हैं। उनकी बोलने की शक्ति जाती रही।

इतने में "साहब आ रहा है, साहब आ रहा है" यह कहते हुए देवगण रास्ता छोड़कर बग़ल खड़े हो गये। वे बारंबार साहब के मुँह की ओर

और वृक्ष की ओर ताकने लगे। समीप आकर साहब ने कहा—हिण्डोस्टानी, टुम लोग क्या डेखटा है? यह कहकर वह चला गया।

इन्द्र—वाह, साहब तो खूब हिन्दी बोलता है। मानो मैना टाँव-टाँव कर रहा था।

वरुण—पितामह, आप उस पेड़ की ओर इतना क्या देख रहे थे?

ब्रह्मा—पत्थर-जैसी इसकी छाल है। किस चीज का यह पेड़ है, यही देख रहा था मैं।

वरुण—यह बिलकुल नये ढंग का पेड़ है। परन्तु यह है बहुत दिन का पुराना। यह कहकर वरुण वङ्क-विहारी की ओर सबको लेकर चले। वहाँ पहुँचकर उन्होंने कहा—ये ही वङ्क-विहारी हैं। वृन्दावन की सभी मूर्त्तियों से यह बड़ी है। व्रजवासियों के ये ही उपास्य देवता हैं।

इन्द्र—इनके वाम भाग में राधा क्यों नहीं हैं? कृष्ण को तो राधिका को आधे तिल के बराबर की भी दूरी पर रखना सह्य नहीं था।

वरुण—व्रजवासियों ने तीन-चार बार राधिका की मूर्त्ति लाकर इनके वाम भाग में रक्खी थी, किन्तु लज्जित होकर इन्होंने उस मूर्त्ति को खींचकर फेंक दिया। बहुत-से लोगों का कहना है कि रात्रि में ये वास्तविक राधिका के साथ विहार किया करते हैं, अतएव वाम-भाग में कृत्रिम राधिका को ये नहीं रखते। प्रातःकाल नौ बजे से पहले इनकी निद्रा भङ्ग नहीं होती, इसलिए उससे पहले मन्दिर का द्वार भी नहीं खोला जाता। कौवों की काँव-काँव से कहीं इनकी निद्रा भङ्ग न हो जाय, इस भय के कारण कौवे साँझ होने से पहले ही वृन्दावन छोड़कर मथुरा चले जाते हैं।

यहाँ से देवगण राधारमण देखने गये। बाद को सीधे गोवर्द्धन पर्वत पर पहुँचे। वरुण ने बतलाया कि यही गोवर्द्धन पर्वत है। लालाबाबू नामक बंगाल के एक सुप्रसिद्ध वैष्णव ने, जिन्होंने वृन्दावन में बहुत-से उत्तम-उत्तम कार्य्य किये हैं, अन्तिम अवस्था में यहीं आकर निवास किया था और यहीं गिरकर वे अकाल मृत्यु को प्राप्त हुए थे।

ब्रह्मा—क्यों? ऐसा क्यों हुआ? इस प्रकार के महान् पुरुष के भाग्य में भी अकाल मृत्यु लिखी हुई थी?

वरुण—कारण यह था कि वैष्णव-धर्म ग्रहण करने के बाद वे नौका से वृन्दावन आ रहे थे। चलते-चलते जब वे काशी के घाट पर पहुँचे तब नौका में परदा डलवा दिया।

इन्द्र—परदा क्यों डलवा दिया?

वरुण—वे वैष्णव थे। भला वे शैव-तीर्थ का दर्शन कर सकते थे?

ब्रह्मा—यही तो उनकी भूल थी। ईश्वर-भाव से उपासना करते समय भी लोग दलबन्दी कर बैठते हैं। ऐसा करने से बड़ा पाप होता है। ईश्वर क्या भिन्न हैं? देश-काल के भेद से वे केवल भिन्न-भिन्न आकार भर धारण किया करते हैं, मूलतः वास्तव में सब एक हैं।

वरुण—गोवर्द्धन पर्वत के सम्बन्ध में लोग कहा करते हैं कि हनूमान् जिस समय विशल्यकरणी के सहित गन्धमादन पर्वत को कन्धे पर लिये हुए लक्ष्मण की प्राण-रक्षा के लिए जा रहे थे उस समय भरत के सींक के वाण के आघात से यहीं पर गिरे थे। पर्वत का जो एक छोटा-सा अंश अन्धकार में दिखाई न पड़ने के कारण वे छोड़कर चले गये थे, उसी को लोग गोवर्द्धन पर्वत कहा करते हैं। कुछ लोगों का यह भी कहना है कि एक बार निरन्तर वर्षा करते-करते वृन्दावन को नष्ट कर देने का उद्योग देवराज ने किया था। उस समय श्रीकृष्ण ने इसी पर्वत को छाते के समान कनिष्ठा अँगुली पर धारण कर रक्खा था। वृन्दावन के निवासी उसी के नीचे आनन्दपूर्वक बैठे हुए थे। पर्वत के ऊपर गोवर्द्धन देव की मूर्त्ति है।

ब्रह्मा—यह कैसी मूर्ति है?

वरुण—यह श्रीकृष्ण के वाल्यकाल की गोपाल-मूर्त्ति है! वल्लभाचार्य ने इस मूर्त्ति की स्थापना की थी। गोवर्द्धनदेव महमूद के भय से यहाँ पर्वत पर भाग आये हैं। आज भी कार्त्तिक के महीने में यहाँ मेला लगा करता है। उस समय यहाँ बहुत-से यात्री आया करते हैं।

यहाँ से देवगण वृकभानु-पर्वत की ओर चले। इस पर्वत पर राधिका के पिता वृकभानु निवास किया करते थे। पर्वत के ऊपर और नीचे बहुत-सी मूर्त्तियाँ हैं। वहाँ से वे लोग अपने स्थान की ओर लौटे और बिस्तर लगा-लगाकर लेट गये। अब गपशप शुरू हुई।

वरुण ने कहा--पहले यहाँ कुल वन ही वन था। वृन्दा नाम की एक बहुत ही दुश्चरित्रा स्त्री थी। वह गाँव के समस्त बालकों तथा बालिकाओं को यहाँ लाया करती और उनके साथ ख़ूब उछलती-कूदती, तरह-तरह के खेल मचाया करती। उसी के नाम के अनुसार इस स्थान का नाम वृन्दावन पड़ा है। क्योंकि वृन्दावन का अर्थ है वृन्दा का वन। उसी स्त्री ने हमारे कृष्ण को भी ख़राब कर डाला था।

नारायण--वरुण, चुप रहो भाई, यह सब तुम क्या बक रहे हो? तुम्हें और कोई विषय ही नहीं सूझता बातचीत करने के लिए?

वरुण--उन सब स्त्रियों की संख्या कुल मिलाकर एक सौ आठ थी। उनमें से ललिता, विशाखा, चन्द्रावली आदि आठ सखियाँ मुख्य थीं। चन्द्रावली उन सबकी अपेक्षा अधिक सुन्दरी थी, इसलिए कृष्ण बहुधा राधिका के पास से चुपके से खिसक जाया करते और उसी के साथ विहार करते।

किसी-किसी दिन तो चन्द्रावली के ही कुंज में रात बिता देने के बाद सवेरा होते-होते कृष्ण राधिका के पास पहुँचते। उस समय उन्हें इतनी डाँट खानी पड़ती, जिसका कोई ठिकाना न था। राधिका कितना अवाच्य-कुवाच्य कहने के बाद घूँघट खींचकर मानिनी बन जातीं।

इन्द्र--मानिनी बन जातीं, तब क्या होता?

वरुण--राधिका के रूठ जाने पर कृष्ण जब उन्हें किसी प्रकार न शान्त कर पाते तब और कोई उपाय न देखकर वृन्दा की शरण में जाते। वृन्दा दुष्ट स्त्री तो थी ही, वह उन्हें सिखा देती कि जाओ, उसके पाँव पकड़कर विनती करो। परन्तु इतने पर भी राधिका का मान भंग न होता। तब मन में दुःखी होकर कृष्ण कभी कहते--संन्यासी होकर काशी जाऊँगा। कभी वे कहते--वैष्णव होकर द्वार-द्वार की फेरी

लगाऊँगा। अन्त में विदेशिनी का या और कोई वेश बनाकर वे राधिका के पास पहुँचते। तब वही वृन्दा बीच में पड़कर विवाद का अन्त करती और दोनों में मेल करा देती। वे सब स्त्रियाँ एकत्र होकर हमारे कृष्ण को न जाने कितने प्रकार के नाच नचाया करती थीं।

प्रातःकाल वे लोग काम्यवन देखने को गये। वहाँ पहुँचने पर वरुण ने कहा--पितामह, पाँसे के खेल में अपना सर्वस्व हार चुकने के बाद राजा युधिष्ठिर इस स्थान पर निवास किया करते थे। यहीं श्रीकृष्ण से उनकी मुलाक़ात हुई थी।

काम्यवन से चलकर वे लोग नन्दनवन में पहुँचे। तब ब्रह्मा ने कहा--नन्दनवन में क्या हुआ था?

वरुण--कंस के भय से श्रीकृष्ण इसी नन्दनवन में छिपे हुए थे। यहाँ नन्द और यशोदा की मूर्त्ति है। श्रीकृष्ण जिसमें से चुरा-चुराकर मक्खन खाया करते थे वह मटकी तथा उनके मस्तक की चूड़ा और उनका पीताम्बर आज भी वर्तमान है।

इन्द्र--उधर वह द्वीप के आकार का जो दिखाई पड़ रहा है, वह क्या है?

वरुण--यह गोकुल है। गोकुल में श्रीकृष्ण कंस के भय से छिपे हुए हैं। यहाँ एक घर में उनके बाल्यकाल के खिलौने तथा दूसरे घर में वसुदेव और देवकी की मूर्तियाँ सुरक्षित हैं। मुसलमानों के भय से गोकुलनाथ यहीं आकर छिपे थे। बाद को वल्लभाचार्य ने उन्हें निकाला था। सम्राट् औरंगजेब के समय में गोकुलनाथ फिर वहाँ से भाग गये, यहाँ नक़ली मूर्त्ति है।

इसके बाद देवगण एक बाजार में गये। उसमें खिलौने की ही दूकानें अधिक थीं। वहाँ की प्रायः हर एक दूकान पर राधा-कृष्ण की मूर्त्ति, नामावली, चन्दन तथा माला-आदि का विक्रय होता रहता है। निकुञ्जवन आदि के पट भी खूब बिका करते हैं। ब्रह्मा ने

एक नामावली ख़रीदी। उन्होंने सोचा कि चलो, अच्छा है, प्रातः-काल स्नान करके मैं इसे धारण किया करूँगा।

दिन को एक बजे लौटकर आने पर देवगण ने देखा तो बाबा चैतन्यदास जी उस समय तक शय्या छोड़कर उठे नहीं थे। वे पलँग पर पड़े ही थे। भिक्षा करके लौटने पर सेवादासियों ने उन्हें उठाया। कोई पैर दाबने लगी, कोई तेल लगाने लगी, कोई चिलम भर ले आई। दो-एक सेवादासियाँ रसोईं के प्रबन्ध में भी लग गईं। उत्तम-उत्तम व्यञ्जन तैयार करके सेवादासियों ने बाबा जी को भोजन कराया, फिर स्वयं उसी थाल पर प्रसाद ग्रहण करने के लिए बैठ गईं। चैतन्य-दास का यह सुख देखकर नारायण ने मन ही मन स्थिर कर लिया कि अब मैं स्वर्ग न जाऊँगा। वैरागी बनकर थोड़ी-सी सेवादासियाँ रख लूँगा और यहीं वृन्दावन में ठाट से रहूँगा।

अन्त में "जय हरी" बोलकर देवगण ने अपनी-अपनी गठरी उठाई। किन्तु नारायण बैठे ही रह गये। तब इन्द्र ने कहा--नारायण, उठो भाई, हम लोगों को कलकत्ता चलना है। तुम इस तरह उदास होकर बैठे क्यों रह गये? वरुण ने जो तुम्हारे सम्बन्ध की बहुत-सी बातें बतला दी हैं, क्या उन्हीं के कारण तुम अप्रसन्न हो गये हो?

वरुण--विष्णु, क्या तुम मुझसे रुष्ट हो गये हो?

नारायण--देवराज, अब मैं स्वर्ग न जाऊँगा।

इन्द्र--क्यों भाई, क्यों? भला स्वर्ग क्यों न जाओगे?

नारायण--किस सुख की आशा से जाऊँ भाई? मैं तो समझता हूँ कि स्वर्ग में अब कोई सुख ही नहीं है। वहाँ सबसे बढ़कर चिन्ता तो है पेट की। दिन भर दौड़-धूप करने के बाद बोझा आदि ढोकर यदि चार पैसे ले भी आये तो घर में सुख से नहीं रहने मिलता, स्त्रियाँ समस्त दिन परस्पर विवाद ही छेड़े रहती हैं। वे आपस में बराबर बक-झक लगाये रहती हैं, कभी-कभी तो हाथा-पाई तक का अवसर आ जाता है। और कहाँ तक कहूँ, मेरा घर क्या है, मानो

अमरावती का बाजार है। तिस पर भी कभी सुनने में आता है पारिजात चाहिए, यह लाओ, वह लाओ। इस तरह विभिन्न प्रकार की माँगें सामने रखकर मित्रों तथा घरवालों से झगड़ा कराने का सामान बराबर तैयार किये रहती हैं। इन सब झञ्झटों से छुटकारा पाने के लिए मैंने तो यही स्थिर किया है कि वैष्णव होकर कुञ्ज में वास करूँगा।

ब्रह्मा—देखो भाई, चाहे देवता हो, गन्धर्व हो, मनुष्य हो, या किन्नर हो, बहु-विवाह सभी के लिए कष्टकर होता है। जो व्यक्ति बहुत-सी स्त्रियों का पाणिग्रहण कर लेता है, उसे कहीं सुख नहीं मिलता। चाहे वह स्वर्ग में रहे, पाताल में रहे या मृत्युलोक में रहे। ऐसी दशा में बहु-विवाह करके तुमने स्वयं ही अपना सुख नष्ट कर डाला है। अब उसके लिए परिताप का अनुभव करना अनुचित है। अब तुम अपने दुष्कर्म के लिए पश्चात्ताप करो और विवाहिता पत्नियों को सुखी करने के लिए प्रयत्न करो। अन्यथा तुम्हारे लोक-परलोक दोनों ही बिगड़ जायेंगे।

इन्द्र—नारायण, तुम्हारे दुःख के दिन अब बहुत थोड़े रह गये हैं। सुना है कि लक्ष्मी अपना सर्वस्व अब तुम्हारे ही नाम विल कर देनेवाली हैं।

नारायण—उनके पास अब है ही क्या ? लोग कहा करते हैं कि सपत्नियों से रुष्ट होकर उन्होंने अपना सर्वस्व मृत्युलोक के कृपण धनवानों को बाँट दिया है।

वरुण—जो भी हो भाई ! गृहस्थी में जब रहना है तब सभी प्रकार के सुख-दुःख भोगने पड़ते हैं। इसलिए इसके लिए मन में दुःख मानना अनुचित है। अब उठो, देरी करने से यदि गाड़ी न मिल सकी तो आगरा जाना न हो सकेगा।

इन्द्र की यह बात सुनने पर नारायण ने एक लम्बी साँस ली और वे हाथ में बैग लेकर उठे। इक्के पर बैठकर देवगण मथुरा स्टेशन

पर पहुँचे। वहाँ से टूँडला का टिकट लेकर वे लोग ट्रेन में बैठे। हुमाहुम करती हुई ट्रेन दौड़ने लगी।

ब्रह्मा--वाह, ये गाड़ियाँ देखने में जैसी सुन्दर हैं, वैसी ही साफ़-सुथरी हैं। चाल भी इनकी ख़ूब तेज़ है!

वरुण ने कहा--जी हाँ, भारतवर्ष में रेल की जितनी लाइनें हैं, उन सबसे अधिक उत्तम प्रबन्ध इसी लाइन में है। यह लाइन पहले ईस्ट इंडिया नामक एक कम्पनी की थी, अब यह भारत-सरकार के अधिकार में है। परन्तु नाम इसका बराबर पुराना ही अर्थात् 'ईस्ट इंडियन रेलवे' चला आ रहा है।

देवगण ने चारों ओर ताककर देखा तो बँगला, अँगरेज़ी और देवनागरी के मोटे-मोटे अक्षरों में लिखा था,--प्रत्येक बेंच पर पाँच से अधिक आदमी न बैठ सकेंगे। यह देखकर देवगण ने रेलवे-बिभाग के प्रबन्ध की बड़ी प्रशंसा की और वे सोचने लगे कि हम लोग कलकत्ता तक बड़े आराम से चले जायँगे। थोड़ी देर के बाद वे टूँडला पहुँच गये और एक ब्राञ्च लाइन की गाड़ी पर बैठकर आगरा गये।

आगरा

देवगण स्टेशन से जैसे ही बाहर निकले, ब्रह्मा चकित होकर बोल उठे--ओह बाबा! वरुण, यह कौन-सा ग्राम है, जिसकी इतनी लम्बी-चौड़ी और ऊँची चहारदीवारी है और दीवार पर जगह-जगह खड्ड हो गये हैं।

वरुण--यह आगराफ़ोर्ट है। यह नगर अकबर बादशाह की राजधानी था, इससे इसका नाम आगरा पड़ा है।

इन्द्र--समय हो गया है, इससे चलो पहले हम लोग स्नान-भोजन कर लें, बाद को ख़ूब जी भरकर आगरा की सैर की जायगी।

नारायण--यह सब देखने पर भूख रह ही नहीं जाती। यदि कोई

हमारे लिए भोजन तैयार कर रखता तो झटपट थोड़ा-सा खाकर घूमने निकल चलते और समस्त दिन इधर-उधर घूम-फिरकर देखते-भालते।

वरुण—अँगरेजी राज्य में बना-बनाया भोजन भी पाया जाता है। जहाँ यह भोजन बनाया जाता है, उस स्थान को लोग होटल कहते हैं। वहाँ पैसे देकर सस्ता-महँगा हर प्रकार का भोजन प्राप्त किया जा सकता है। वहाँ सोने की भी उत्तम व्यवस्था होती है।

ब्रह्मा—वहाँ भोजन बनाते कौन हैं?

वरुण—ब्राह्मण लोग। वहाँ ऐसे ब्राह्मण नौकर रहा करते हैं जो भोजन बनाने में कुशल होते हैं।

नारायण—अच्छी बात है। अब हम लोग होटल में ही भोजन किया करेंगे। प्रतिदिन हाथ जला-जलाकर भोजन बनाना तो बहुत कष्टकर मालूम पड़ा करता है।

देवगण स्नान के निमित्त यमुना जी की ओर चले।

वहाँ पहुँचकर वरुण ने कहा—पितामह, यमुना-तट की इस बालुका के ऊपर व्यासदेव ने जन्म ग्रहण किया था।

नारायण—आहा! कितना सुन्दर पुल बनाया गया है यह! वरुण, उस पार जो वाटिका दिखाई पड़ रही है, उसका क्या नाम है?

वह अकबर बादशाह का लगवाया हुआ इमदाद बाग़ है। इसके समीप ही रामबाग़ नाम का एक और भी बहुत ही सुन्दर बग़ीचा है, जिसमें अकबर ने एक बहुत ही अच्छी बैठक भी बनवाई थी।

देवगण स्नान करके सन्ध्या-तर्पण कर रहे थे, इतने में घूँघट से मुँह ढके हुए एक स्त्री मूर्त्ति आई और ब्रह्मा के चरणों में प्रणाम करके रोने लगी।

उसे देखकर विधाता ने कहा—हे दुःखिनी, तुम कौन हो?

स्त्री-मूर्त्ति ने कहा—विधाता, अब मुझे भला आप क्यों पहचान पावेंगे? परन्तु सूतिका-गृह में इतना अधिक क्लेश पाना मेरे भाग्य में लिख देना भला आपको उचित था? मेरी रक्षा करो महाराज! मैं अपने

मस्तक की रेखा ख़ूब अच्छी तरह धोये आ रही हूँ, जरा एक क़लम ठीक से चला दो। अब नहीं सहा जाता! ओह मा! प्राण निकलने चाहते हैं!

ब्रह्मा ने कहा--ओह, यमुना हो तुम? कहो बहन, तुम्हारी यह दशा आज कैसे हुई? तुम्हारा दुःख देखकर तो मेरा हृदय विदीर्ण होता जा रहा है!

यमुना ने कहा--हे विधाता, देखो, तुम्हारे बनाये हुए मनुष्य मेरी कितनी दुर्दशा कर रहे हैं। उन लोगों ने मुझे प्रयाग आदि स्थानों में ऐसे ढंग से बाँध दिया है कि मुझमें करवट बदलकर लेटने की शक्ति ही नहीं रह गई है। इस प्रकार बन्धन में पड़ी-पड़ी मैं अधीर हो उठी हूँ, रात-दिन रोते-रोते अपने आँसुओं से जल की वृद्धि कर रही हूँ। ओह मा! प्राण निकलने चाहते हैं। अब नहीं सहा जाता!

ब्रह्मा ने कहा--हे यमुना, महाप्रलय तक तुम्हें इसी अवस्था में रहना पड़ेगा। इतने समय तक तुम रही कहाँ हो?

यमुना--प्रयाग से आकर आजकल मैंने इस पुल के नीचे एक गह्वर तैयार कर लिया है। उसी में बैठी हुई दिन-रात केवल रोती रहती हूँ। कौन-सा स्थान भग्न होने पर मुझे आघात सहन करना होगा, इस चिन्ता से न तो मेरी आँख लगती है और न पेट में अन्न जाता है।

ब्रह्मा--देखो बहन, तुम्हारे भाई यम मेरे मनुष्यों पर बड़ा अत्याचार किया करते हैं। इसी लिए मनुष्य भी तुम्हारी इस प्रकार की अवस्था कर रहे हैं। यम के अन्याय से मन को बड़ा क्लेश होता है। माता-पिता की गोद से वे उनका सर्वस्व धन, एकमात्र पुत्र, छीन लेते हैं। परिवार भर में जो व्यक्ति सबसे उत्कृष्ट होता है, पहले मानो उसी की ओर उनकी दृष्टि घूमती है। जिसे वे देखते हैं कि यह व्यक्ति बहुत बड़े परिवार का पालन कर रहा है, सबसे पहले उसी को लेकर वे निश्चिन्त होते हैं। कितने नन्हें-नन्हें बालकों तथा बालिकाओं के माता-पिता में से पिता को पहले ही झपट लेने में वे आनन्द का

अनुभव किया करते हैं। जो पति-पत्नी एक दूसरे से पृथक् होने पर एक क्षण को एक युग के बराबर समझते हैं, जो रात-दिन एक दूसरे का मुँह ताकते रहने पर भी तृप्ति का अनुभव नहीं कर पाते, ऐसे कृत्रिमता से हीन प्रेम के बन्धन को अपने कुठार के आघात से काटकर वे दोनों में सदा के लिए वियोग कर देते हैं। अतएव हे बहन, यह मनुष्य-जाति तुम्हारे भाई का अन्याय और अत्याचार नहीं सहन कर सकी, इसी लिए लोग तुम्हारी यह दुर्दशा कर रहे हैं।

इन्द्र—यम के अन्याय के कारण यमुना को बन्धन में पड़ना पड़े यह कैसा न्याय है?

वरुण—भाग-भागकर खेत चरनेवाली गायों के अपराध से कपिला को बन्धन में डालने में जिस प्रकार के न्याय का उपयोग किया गया था, उसी प्रकार के न्याय का उपयोग यहाँ भी किया गया है।

इसके बाद देवगण होटल को चले। यमुना ने भी जल में प्रवेश करके अपने गह्वर में आश्रय ग्रहण किया। देवगण के होटल में प्रवेश करते ही एक बंगाली बाबू तेजी से पैर बढ़ाते हुए पितामह के पास आये और उनका हाथ पकड़कर बाहर ले आये। यह देखकर दूसरे देवता भी साथ-साथ चले आये।

ब्रह्मा—आप मेरा हाथ पकड़कर बाहर क्यों लाये?

बंगाली—आप भी क्या कह रहे हैं बाबू साहब? होटल में क्या भले आदमी भोजन किया करते हैं? यहाँ के पाचक सब म्लेच्छ हैं। हिन्दुओं की जाति नष्ट करने के लिए गले में जनेऊ डालकर ये ब्राह्मण बन गये हैं। आप लोग कालीबाड़ी में चलिए।

ब्रह्मा—कालीबाड़ी क्या है?

बंगाली—पश्चिम में मुसलमान लोग बहुत अधिक अत्याचार करते हैं, इसी लिए हिन्दुओं ने चन्दा करके स्थान-स्थान पर कालीबाड़ी बनवा लिया ह। वहाँ अच्छे-अच्छे ब्राह्मणों के द्वारा महामाया के भोग

के लिए तरह-तरह की खाद्य सामग्रियाँ बनाई जाती हैं, और वह प्रसाद भोजन के निमित्त यात्रियों को दिया जाता है।

देवगण को कालीबाड़ी में बड़े आदर के साथ रहने के लिए स्थान मिल गया। भोजन-आदि से निवृत्त होकर साँझ को वे लोग नगर में भ्रमण करने के लिए निकले। सबसे पहले वे लोग क़िले के पास पहुँचे।

वरुण--देखिए पितामह, यही आगरा का क़िला है। क़िले में प्रवेश करने के लिए जो यह दरवाज़ा है, इसी का नाम है दर्शन-दरवाज़ा। इस दर्शन-दरवाज़े से बेगमें मल्ल-युद्ध आदि देखा करती थीं।

ब्रह्मा--दरवाज़े के मेहराब-आदि तो बहुत ही सुन्दर मालूम पड़ते हैं।

यह प्रायः तीन सौ वर्ष का है, परन्तु देखने में आज भी बिलकुल नया मालूम पड़ता है।

क़िला में प्रवेश करके सब लोग चले जा रहे थे, इतने में ब्रह्मा ने कहा--वाह, इतना सुन्दर द्वार तो मैंने और कभी देखा ही नहीं। इसकी मेहराब भी बहुत सुन्दर बनी है। यह द्वार किस नाम से प्रसिद्ध है वरुण?

वरुण--इसका नाम है बुख़ारागेट। इसे आजकल लोग उमराव-सिंह का फाटक कहा करते हैं।

इन्द्र--इसके भीतर तो बहुत उत्तम-उत्तम घर बने हुए हैं। उस छत पर क्या हुआ करता है वरुण?

वरुण--वह बादशाह का नौबतख़ाना है। इस स्थान पर दिन के प्रत्येक प्रहर में प्रत्येक स्वर में नौबत बजा करती थी। यह नदी की ओर जो स्थान दिखाई पड़ रहा है, जिसमें कि सफ़ेद पत्थर के अगणित मेहराब बने हुए हैं, उसका नाम है दीवान-ए-ख़ास। इस स्थान पर बैठकर बादशाह अकबर बंगाल, बिहार और

काश्मीर आदि देशों पर आक्रमण करने का कार्यक्रम बनाया करता था। वृद्ध हो जाने पर बादशाह शाहजहाँ यहीं पर क़ैद था। यह काले रंग के संगमरमर का एक सिंहासन है। यह सिंहासन बारह फ़ुट चौड़ा और दो फ़ुट ऊँचा है। इस पर बैठकर अकबर गर्मी की ऋतु में वायु-सेवन किया करता था।

नारायण—आहा! इन्हीं लोगों ने यथार्थ में सुख-भोग किया था। देवता होकर हम लोगों ने क्या किया है?

सब लोगों के शीशमहल के पास पहुँचने पर वरुण ने कहा—देखिए पितामह, इस स्थान की दीवारें काँच की बनी हुई हैं।

इन्द्र—यहाँ क्या होता था?

वरुण—इस घर में बेगमें स्नान किया करती थीं। बादशाह लोग ऐसे अवसर पर इन दीवारों की आड़ से उन्हें देखकर विनोद का अनुभव किया करते थे।

नारायण—शौक़ तो बुरा नहीं था।

ब्रह्मा—यह क्या है जो भिन्न-भिन्न रंग के पत्थरों के टुकड़ों से सजाया हुआ है?

वरुण—यह एक क़ब्र है। उधर बादशाह के अन्तःपुर का बग़ीचा देखिए! इस बग़ीचे के-से सुन्दर पुष्प देवताओं ने कभी आँख से भी नहीं देखे।

वहाँ से देवगण दीवानख़ाना देखने के लिए चले। चलते समय वरुण ने कहा—देखिए पितामह, यह जो आप सुरंग देख रहे हैं, लोगों का कहना है कि इससे होकर भीतर ही भीतर आगरा से दिल्ली तक आदमी चला जा सकता है।

ब्रह्मा—ओह, अद्भुत शक्ति थी उन लोगों की! चलते-चलते देवगण दीवानख़ाने में पहुँच गये। इतना लम्बा-चौड़ा दालान देखकर वे लोग आश्चर्य में आगये। वरुण ने कहा कि यह दालान लम्बाई में १८० फ़ुट है और चौड़ाई में ६० फ़ुट है। इस दालान में एक

सिंहासन था। उसी पर बैठकर अकबर दरबार किया करता था। सोमनाथ के मन्दिर का जो बहुत प्रसिद्ध चन्दन का दरवाज़ा था, उसका अपहरण करके डाकू लोग यहीं ले आये थे।

ब्रह्मा--आहा! इस दरवाज़े के लिए सदाशिव आज भी मेरे सामने बीच-बीच में दुःख प्रकट किया करते हैं।

वरुण--देखिए, उस ओर मोती मसजिद है। अच्छे से अच्छा संगमरमर पत्थर मोती से मिला-मिलाकर यह मसजिद बनाई गई है। इसी लिए इसका नाम मोती मसजिद पड़ा है। समीप जाकर ब्रह्मा ने कहा--हाँ, निस्सन्देह इसका मोती मसजिद नाम सार्थक है।

वरुण--इस मोती मसजिद में संगमरमर पत्थर के केवल एक टुकड़े से बना हुआ एक सिंहासन था, जिसकी परिधि चालीस फ़ुट थी। उस पर बैठकर अकबर बादशाह प्रतिदिन स्नान किया करता था। उस सिंहासन की सुन्दरता पर मुग्ध होकर इँगलैंड के राजा चौथे जार्ज को उपहार देने के लिए लार्ड हेस्टिंग्ज़ ने उसे विलायत भेज दिया।

इन्द्र--किसका धन किसने किसे उपहार में दिया! अच्छा, यहाँ और क्या-क्या है?

वरुण--यहाँ और कुछ नहीं है। परन्तु एक समय जहाँगीर का शराब पीने का प्याला, जिसकी बड़ी प्रशंसा थी, यहीं पर था। वह प्याला बहुत-सी उत्तम-उत्तम मणियों तथा मुक्ताओं से सुसज्जित था। अँगरेज़ी राज्य के अधिकारी उस प्याले को कलकत्ते के म्युजियम में उठा ले गये और वहीं वह रक्खा हुआ है। यहाँ एक बहुत बड़ी तोप थी। लोगों का कहना है कि वह तोप महाभारत के वीर योद्धाओं की थी। वह तोप भी विलायत भेज दी गई है।

इन्द्र--दो-एक चीज़ें देखने से क्या विलायतवालों के कौतूहल की निवृत्ति हो सकती है? यह सारा का सारा मोती मसजिद यदि भेज दिया जाता तो वे कुछ चक्कर में भी आते और भारतवासियों

की कारीगरी तथा उनके बुद्धि-कौशल का उन्हें कुछ परिचय भी मिल सकता।

मोतीमहल देखने के बाद देवगण स्थान पर लौट आये। लौटते समय वरुण ने कहा---देखिए पितामह, क़िले का जो वह स्थान दिखाई पड़ रहा है, उसके ऊपर से नीचे की ओर एक भयंकर खोह चली गई है। उस खोह का पेंदा कहाँ है, इस बात का निर्णय आज तक नहीं हो पाया है। जब कभी किसी व्यक्ति के विरुद्ध हत्या का अपराध प्रमाणित हो जाता तब बादशाह लोग उसे इसी खोह में डलवा दिया करते थे।

इसके बाद स्थान पर जाकर देवगण लेट गये। लेटे-लेटे वे लोग बहुत-से घरेलू विषयों पर बातें करने लगे। ब्रह्मा ने कहा---हलवाहों को मैं खेतों की ऊँची-नीची जगहों को बराबर करके बीज बोने को कह आया था। यदि वैसा कर दिये होंगे तो अच्छा ही है। अन्यथा बड़ा नुक़सान होगा। विचार है कि मृत्युलोक से लौटने के बाद चण्डी के मण्डप को थोड़ा-सा और ऊँचा करके छवावेंगे।

देवगण जहाँ ठहरे हुए थे, उसके पास के ही एक मुसलमान के यहाँ विवाह था। बजनियों ने सारी रात एक ही ढंग से बाजे बजाते-बजाते देवगण को परेशान कर डाला।

नारायण ने कहा---इन दुष्टों की टोली का जितना नख़रा है, वह सब हमीं लोगों के लिए है। विवाह या पूजा के समय जब इन्हें बाजा बजाने के लिए बुलाया जाता है तब पूरे नवाब के नाती बन जाते हैं और ढोल पर लकड़ी ही नहीं फेरना चाहते। तेल दो, जलपान दो, इनाम दो, जितना भी दो, उनको संतोष नहीं होता। सीधे ये लोग मुसलमानों से ही होते हैं। एक स्वर से रात भर बजाते-बजाते इन लोगों ने दिमाग़ परेशान कर डाला।

दूसरे दिन सवेरे विश्वविख्यात ताजमहल देखने के लिए देवगण चले। उसके समीप पहुँचकर ब्रह्मा ने कहा---वरुण, यह क्या?

मेरे मन में तो ऐसी बात आती है कि मैं अपने चारों मुख और आठों नेत्र बाहर निकालकर देखूँ और ख़ूब देखूँ। यह सुनकर इन्द्र ने कहा--मेरी भी इच्छा होती है कि अपने सहस्र लोचन निकाल लूँ। परन्तु इस बात का भय होता है कि कहीं नये ढंग का जीव समझकर लोग मुझे चिड़ियाख़ाने में न बन्द कर लें।

नारायण ने कहा--जिसने यह ताजमहल बनाया था, वह हमारे विश्वकर्मा के बाबा का भी बाबा है।

वरुण--देखिए, इसकी पाँचों चूड़ायें कितनी ऊँची हैं। ताज-महल यमुना जी के बिलकुल ऊपर बना हुआ है, इसलिए नौका पर से देखने में यह बहुत ही सुन्दर मालूम पड़ता है। इसकी जितनी ऊँची मसजिद भूमण्डल में दूसरी नहीं है। बाइस हज़ार आदमियों ने मिल-कर बाइस वर्ष में इसे बनाया था। आगरा ताजमहल के ही कारण प्रसिद्ध है।

ब्रह्मा--दीवार पर पुष्प-लता तथा वृक्ष आदि जो बने हुए हैं, वे पहले देखने में ऐसे जान पड़ते हैं कि मानो ये बिलकुल असली हैं।

वरुण--एक समय था जब कि ये पुष्प-लता और वृक्ष आदि हीरा और मणि के द्वारा सजाये गये थे। मरहठे डाकू वे सब हीरा-मणि दीवारों से खोदकर निकाल ले गये।

मसजिद में प्रवेश करके चकित-भाव से सब लोग चारों ओर देखने लगे। एक क़ब्र देखकर इन्द्र ने कहा--वरुण, यह कैसा स्थान है?

वरुण--इसे लोग मुमताजमहल कहते हैं। यहीं पर शाहजहाँ को दफ़नाया गया है।

ब्रह्मा--इस ओर जो क़ब्र दिखाई पड़ रही है, वह किसकी है? इसके सिवा इस ताजमहल के बनवाने का उद्देश्य क्या है?

वरुण--उधरवाली क़ब्र शाहजहाँ की प्यारी बेगम मुमताज की है। एक दिन सम्राट् के साथ ताश खेलते-खेलते बेगम ने कहा--नाथ मेरे मरने पर तुम क्या करोगे? इसके उत्तर में सम्राट् ने कहा--प्यारी,

मैं ऐसे स्थान पर तुम्हारी क़ब्र बनाऊँगा जो कि समस्त भूमण्डल में विख्यात होगा। उसके बाद से ही शाहजहाँ ने यह ताजमहल बनवाना आरम्भ कर दिया। इसके बनवाने में बहुत-से राजाओं से बड़ी सहायता मिली थी। जयपुर के राजा ने बहुत-से बहुत ही उत्कृष्ट पत्थर दिये थे। वे सब पत्थर अस्सी कोस की दूरी से गाड़ी पर लादकर लाये गये थे।

नारायण—इसके भीतर और क्या है?

वरुण—नूरजहाँ की लड़की अजबजा की भी यहीं पर क़ब्र है। शाहजहाँ के साथ अजबजा का भी विवाह हुआ था। ताज से लगा हुआ जो बग़ीचा है, वह भी बहुत ही मनोरम है। बग़ीचे के भीतर को जानेवाले रास्ते के दोनों किनारों पर थोड़ी-थोड़ी दूर पर पानी के बहुत ही अच्छे अच्छे फ़ौवारे बने हैं, जो बहुत ही उत्तम श्रेणी के हैं। इन फ़ौवारों की संख्या ८३ है। इसके पूर्व में कई एक मसजिदें हैं। अन्य दिशाओं में बहुत-सी गिरी-पड़ी अट्टालिकाओं की दीवारें आदि देखने में आती हैं। यहाँ संगमरमर का बना हुआ एक पुल भी है। इस पुल का बनना जब आरम्भ हुआ तब शाहजहाँ तथा उनके किसी पुत्र में युद्ध आरम्भ हो गया, इससे इस पुल का बनना स्थगित हो गया।

ब्रह्मा—वास्तविक आगरा कौन-सा स्थान है?

वरुण—आगरा यमुना के दोनों तटों पर वर्त्तमान है। आगरा के चौक की प्रशंसा सुनकर वे लोग चौक देखने के लिए चले।

चौक में पहुँचने पर मणि-मुक्ता तथा अन्यान्य प्रकार की सामग्रियों की दूकानें देखकर वे लोग बहुत ही आह्लादित हुए। देवराज ने अपने पौत्र के विवाह के अवसर पर उसकी वधू को देने के लिए पत्थर का बना हुआ पाँच रुपये का एक ताजमहल ख़रीदा। ब्रह्मा ने गुड़गुड़ी का जो नर्चा ख़रीद रक्खा था उसे बन्दरों ने नष्ट कर डाला था। इससे उन्होंने आगरा में एक नर्चा फिर ख़रीदा। पूजा और

समय बैठने के लिए उन्होंने एक आसन भी ख़रीद लिया। नारायण ने कई सतरंजियाँ और ग़लीचे ख़रीदे। अन्त में सब लोग स्टेशन की ओर चले।

वरुण——गर्मी के दिनों में आगरा में बड़े ज़ोरों की गर्मी पड़ा करती है। दिन में तो लू के मारे बाहर मुँह निकालने तक का साहस नहीं होता। आगरा एक कमिश्नरी और ज़िला है, इससे यहाँ सब प्रकार की आवश्यक सरकारी अदालतें तथा आफ़िस आदि हैं। आगरा का विश्व-विद्यालय भी काफ़ी विख्यात है। यहाँ से प्रतिवर्ष बहुत-से विद्यार्थी उच्च परीक्षाओं में उत्तीर्ण होकर कार्यक्षेत्र में अवतीर्ण हुआ करते हैं। यहाँ एक मेडिकल कालेज और एक ट्रेनिंग कालेज भी है।

स्टेशन जाकर देवगण ने प्रयाग का टिकट लिया और गाड़ी पर सवार होकर यथासमय वे वहाँ पहुँच गये।

प्रयाग

प्रयाग नगर के जंकशन स्टेशन पर उतरने के बाद देवगण एक घोड़ा-गाड़ी करके गंगा, यमुना और सरस्वती के संगम में स्नान करने के लिए चले। स्टेशन से त्रिवेणी जी का तट प्रायः ढाई कोस की दूरी पर है। दुर्भाग्यवश उस दिन गाड़ीवाले ने घोड़ा भी बिलकुल अल्हड़ जोत रक्खा था। गाड़ी खींचने का उसे अभी अभ्यास नहीं था। इससे कभी तो वह चलते-चलते लोट पड़ता, कभी किसी नाली में ले जाकर देवगण के सहित गाड़ी को उलट देने के लिए अपनी सारी शक्ति लगाकर प्रयत्न करता। अन्त में गाड़ीवाला निरुपाय होकर गाड़ी पर से उतर पड़ा और घोड़े के पीछे-पीछे दौड़ता हुआ अच्छी तरह मरम्मत करके उसे इस बात के लिए सावधान करने लगा——चाहे तुम कितना ही पाजीपन क्यों न करो, भारवहन के इस क्लेश से तुम्हारा छुटकारा नहीं है। विधाता ने तुम्हारे अदृष्ट में यह लिख रक्खा है कि तुम्हें

बग्गी खींचनी होगी। इसलिए तुम जब तक जीवित रहो, तब तक ज़रा-ज़रा-से दाना-पानी से संतोष करके इस कार्य में लगे रहो। किसलिए व्यर्थ में डंडे की चोट खा-खाकर यन्त्रणा सहन कर रहे हो? जब तक यमराज का निमंत्रण तुम्हारे पास तक न पहुँच पावेगा तब तक तुम्हारा पिंड छूटने का नहीं है।

क्रमशः देवगण त्रिवेणी के तट पर पहुँच गये। वहाँ पहुँचकर उन्होंने देखा कि क्षेत्र की बालुका-राशि पर एक सुन्दर-सा नगर बसा हुआ है। नाई लोग बग़ल में किस्बत दबाये और हाथ में लोटा लिये हुए प्रसन्न-भाव से इधर-उधर दौड़ रहे हैं। उन्हें देखकर ब्रह्मा ने कहा—वरुण, ये लोग कौन हैं? इतने प्रसन्न ये क्यों दिखाई पड़ रहे हैं?

वरुण ने कहा—ये सब प्रयाग के नापित हैं। माघ मास में इन लोगों की ख़ूब बन आती है। यात्रियों के मस्तक पर छूरे चला-चलाकर ये लोग इस एक महीने में काफ़ी रुपये कमा लेते हैं। इस वर्ष यात्री कुछ अधिक संख्या में आगये हैं, इससे ये लोग अधिक प्रसन्न हैं।

संगम के समीप ही बने हुए प्रयाग के सुप्रसिद्ध क़िले की ओर संकेत करके देवराज ने कहा—वरुण, यह क्या दिखाई पड़ रहा है?

वरुण—यह इलाहाबाद-फ़ोर्ट—क़िला है। सिपाही-विद्रोह के समय यह क़िला बहुत ही विकराल रूप का हो गया था। अँगरेज़ लोग इस क़िले की बहुत ही प्रशंसा किया करते हैं।

इन्द्र—इसका निर्माण किसने करवाया था?

वरुण—बहुत दिन पहले हिन्दू राजाओं के द्वारा इसका निर्माण हुआ था। बाद को इसका ध्वंस हो गया था। केवल चहारदीवारी ही बची हुई थी। अन्त में अकबर ने नये सिरे से इसका निर्माण करवाया। आजकल यह अँगरेज़ों के अधिकार में है। इस प्रकार हिन्दू, मुसलमान और अँगरेज, इन तीन जातियों का इस पर आधिपत्य रहा और

इसके निर्माण में तीनों ही जातियों की रुचि का योग है। क़िले के भीतर अक्षय-वट और एक शिव-लिंग है।

चलो, हम लोग अक्षय-वट देख आवें, यह कहकर विधाता देवगण को लिये हुए क़िले की ओर चले। रास्ते में उन्हें एक साहब दिखाई पड़ा। जिसके पीछे-पीछे कई हिन्दुस्तानी चले आ रहे थे। पूछ-ताछ करने पर मालूम हुआ कि साहब एक पादरी है और जो लोग उसके पीछे-पीछे चल रहे हैं, वे सब अभी हाल में 'ईसाई-धर्म' की दीक्षा ग्रहण करने के बाद अन्धकार से प्रकाश में आये हैं। ये हिन्दुस्तानी या नव-दीक्षित ईसाई अर्थाभाव के कारण मैले-कुचैले कपड़े पहने हुए थे। शरीर में भी इनके ऐसा लावण्य नहीं था। बग़ल में ये सब थोड़ी-थोड़ी-सी किताबें दबाये हुए थे। देखने पर जान पड़ता था कि शायद ये फेरी-वाले हैं और किताबें बेचने के लिए निकले हुए हैं। ये पुस्तकें ख़ूब उदारतापूर्वक वितरित की जा रही थीं। नारायण भी दौड़कर एक पुस्तक माँग ले आये।

वरुण—नारायण, फेंक दो यह पुस्तक, फेंक दो। इसे फेंककर प्रयाग में मस्तक मुँड़वाओ। ईसाई-धर्म की पुस्तक तुमने कैसे छू ली? जानते हो तुम? देवतागण यदि यह बात जान पायेंगे, तो तुमसे प्रायश्चित्त करवाये बिना न रहेंगे।

नारायण—यह क्या ईसाई-धर्म की पुस्तक है? मुझे तो मालूम नहीं था। कल रात्रि में तम्बाकू लपेटने में असुविधा मालूम पड़ रही थी, इससे मैंने इसे ले लिया था।

ब्रह्मा—नहीं, तुम इसे फेंक दो। क्यों वरुण, क्या वे लोग गङ्गा-स्नान के निमित्त आये हैं?

वरुण—जी नहीं। ये लोग मेले में प्रायः दिखाई पड़ते हैं और हिन्दू-धर्म की निन्दा करके लोगों को ईसाई बनाने का प्रयत्न किया करते हैं।

देवगण के क़िले में प्रवेश करने पर वरुण ने कहा—यह क़िला नगर से दूर मैदान में बना हुआ है और मैदान के ऐसे कोने पर बना

हुआ है, जहाँ पर गङ्गा और यमुना एक-दूसरे से मिलती हैं। उधर देखिए, वह बादशाह अकबर का राजभवन है। उस राजभवन से स्नान के निमित्त जल में उतरने के लिए जो सीढ़ी बनी थी, वह आज भी बनी हुई है। इसी सीढ़ी पर बैठकर पहले मुग़ल-रमणियाँ स्नान किया करती थीं। अक्षयवट देखकर ब्रह्मा ने कहा––इस वृक्ष को देखकर मुझे सन्देह होता है कि पंडों ने एक बनावटी वृक्ष लगा रक्खा है।

इन्द्र––इसमें कोई आश्चर्य नहीं है। मृत्युलोक के निवासी आजकल धन के इतने लोभी हो गये हैं कि पुण्य का लोभ दिखलाकर दूसरों से पैसे ऐंठना उनके लिए कोई वैसी बात नहीं रह गई है। भीम की गदा देखकर देवगण त्रिवेणी जी के क्षेत्र में लौट आये।

क्षेत्र में अगणित नाई, पंडे, घाटिया, भिक्षुक आदि यात्रियों के कपड़े तक छीन लेने पर उतारू थे। सभी पंडे थोड़ा-थोड़ा-सा स्थान अपने अधिकार में किये हुए बैठे थे और अपनी-अपनी चौकी के पास अपना-अपना झंडा गाड़े हुए थे। देखने में ऐसा जान पड़ता कि मानो यह स्थान कोई बन्दरगाह है और अँगरेज़ों, डचों तथा फ़ांसिसियों आदि के व्यापारिक जहाज खड़े होकर अपनी-अपनी पताका उड़ा रहे हैं। घाट पर भी बड़ा कोलाहल था। कोई-कोई लोग तो स्नान से निवृत्त होकर पूजा कर रहे थे, कोई मुण्डन करवा रहे थे और किसी-किसी की पंडों के साथ दक्षिणा के सम्बन्ध में वाक्-कलह के साथ ही साथ हाथापाई तक की नौबत आ रही थी। किसी-किसी के हाथ से भिक्षुकगण पैसे ही छीने ले रहे थे।

भीड़ से होकर विधाता जल के पास जाकर उपस्थित हुए और उच्च स्वर से बोले––गङ्गे, पतित-पावनि, आओ मा, एक बार फिर मेरे कमण्डलु में आ जाओ।

इतना कहकर पितामह रोने लगे। यह देखकर वरुण ने कहा–– यह क्या कर रहे हैं आप? क्या आप चाहते हैं कि सब लोगों को मालूम

हो जाय कि आप कौन हैं? आप घबराते क्यों हैं ? जहाँ कहीं भी सम्भव होगा, मैं आपसे उनकी मुलाक़ात करा दूँगा।

नारायण--इनके कारण तो मामला बड़ा ही गड़बड़ हो रहा है। कहीं पुलिसवाले पकड़कर इन्हें पागलख़ाने में न डाल दें।

इतने में नाई आया और छुरा चमकाने लगा। विधाता ने कहा--तुम लोग मुण्डन करवाकर स्नान कर लो।

नारायण--मस्तक के बाल तो मुझसे न बनवाये जायँगे।

ब्रह्मा--नारायण क्या कह रहे हो तुम ? मृत्युलोक की हवा में आकर क्या तुम भी नास्तिक हो गये हो? तीर्थ का जो माहात्म्य है, उसके अनुसार कार्य करो।

नारायण--मुझसे तो भाई यह न हो सकेगा। आप ज्येष्ठ हैं, आपने मुण्डन करवा लिया तो समझ लीजिए कि हमने भी करवा लिया। दक्षिणा के रूप में नापित महोदय को कुछ दे देने में अवश्य मुझे कोई आपत्ति नहीं है।

"तुम लोगों की जो इच्छा हो, वही करो। इसी प्रकार तो उत्तरोत्तर हिन्दुत्व का नाश होता जा रहा है।"

इतना कहकर ब्रह्मा मुण्डन कराने लगे। गङ्गा के वियोग के कारण उनके दोनों नेत्रों से आँसू बह रहे थे। इतने में पादरी साहब भी अपना दल लिये हुए उनके पास आ पहुँचे। उन्होंने कहा--बुड्ढा, टुम गङ्गा-गङ्गा करके रोटा है! कितना अफ़सोस है! वह टो पानी है। वह क्या टुमको डर्शन डेगा। इतना कहकर वह चला गया।

इन्द्र--साहब तो अच्छा रंग झाड़ गया। अच्छा वरुण, इस कीचड़ में किसकी मूर्त्ति पड़ी है ?

वरुण--यह हनूमान् की मूर्त्ति है। जान पड़ता है कि हनूमान् के मन में अहङ्कार बहुत अधिक था। उन्होंने यह सोच रक्खा था कि संसार में मेरे समान कोई और वीर नहीं है, मेरे सिवा और कौन इतना शक्तिशाली हो सकता है जो इस अजेय समुद्र पर सेतु का निर्माण कर सके।

परन्तु जब से उन्होंने यमुना का पुल देखा है, तब से उनकी बुद्धि ठिकाने पर आई है। अब उन्होंने अनुभव किया कि संसार में मैं ही सब कुछ नहीं हूँ, मेरे भी दादा हैं। इसलिए व्यर्थ का अहङ्कार करके मैंने जो पाप किया है, उसके प्रायश्चित्त के लिए प्रयाग में मुण्डन करवाना चाहिए। अन्त में मुण्डन करवा चुकने पर भी जब उनके मन की ग्लानि न दूर हुई तब यहीं कीचड़ में वे पड़ गये। इस प्रकार पड़े-पड़े वे पश्चात्ताप कर रहे हैं।

स्नान से निवृत्त होकर तट पर आने पर देवगण ने देखा तो पादरी साहब खड़े होकर व्याख्यान दे रहे थे और बहुत-से अशिक्षित आदमी उन्हें घेरकर खड़े थे। साहब कह रहे थे—हाय, इससे बढ़कर अफ़सोस की बाट और क्या हो सकटी है कि जो जल एक साधारण जल है, उसे टुम हिन्डू लोग डेवटा मानकर पूजटे हो, उसके सामने माठा मुँडाटे हो। यह गुनाह है। अब टुम लोग इस अंढकार से निकलो। रोशनी में आओ। प्रभु यीशु से क्षमा माँगो। वे टुम्हारा उड्ढार करेंगे।

समीप ही कोई हिन्दू युवक खड़ा था। उतावली के साथ बढ़कर उसने एक ईसाई का हाथ पकड़ लिया और बोला—भाई साहब, क्या तुम लोग रोशनी में आगये हो?

मस्तक हिलाते हुए ईसाई ने कहा—कुछ-कुछ।

नारायण—साहब हिन्दी अच्छी बोलता है। भूल केवल इतनी करता है कि त के स्थान पर ट और द के स्थान पर ड कह जाता है।

पादरी—भाइयो, ईश्वर ने इस जगह पर इटना प्रेम किया कि अपने अकेले बेटे यीशु को भी जगट में भेज डिया। जो कोई अपने पापों के लिए मन में डुखी होकर उनकी शरण में जायगा, उसका वे उड्ढार कर डेंगे। यीसू ने जगट के पाप के लिए अपने प्राण डिये। अपना रकट डेकर उन्होंने जगट का उड्ढार किया। टुम लोग उन्हीं प्रभु को सडा भजो। उनको छोड़कर टुम लोग का पाप-टाप और कोई न डूर कर सकेगा। और डेखो—

ऊपर जिस हिन्दू युवक का उल्लेख किया जा चुका है, वह झट

से बोल उठा--देखिए साहब, मैं भी यीशु के प्रति भक्ति करता हूँ। वे वास्तव में एक महापुरुष थे। परन्तु उनके अतिरिक्त जीव को मुक्ति प्रदान करनेवाला और कोई है ही नहीं, इस बात पर मैं विश्वास नहीं कर सकता। जो कोई व्यक्ति शुद्ध अन्तःकरण से ईश्वर का भजन करेगा, जो वास्तव में उसे प्राप्त करने के लिए व्याकुल हो उठेगा, वह उसे पाकर ही रहेगा। भगवान् उसे अपने क्रोड में आश्रय दिये बिना न रहेंगे। और विषयों में भाग्य का भरोसा किया जा सकता है, किन्तु धर्म के सम्बन्ध में भाग्य का आश्रय लेना सम्भव नहीं होता। यदि पाप के लिए हृदय में वास्तविक पश्चात्ताप उपस्थित होता है तब राम, कृष्ण, यीशु और मुहम्मद आदि किसी को भी पुकारने की आवश्यकता नहीं होती। मुक्ति स्वयं प्राप्त हो जाती है। क्या तुम ईश्वर को इतना पक्षपाती समझते हो, जो वह इतना असङ्गत विधान बना देगा कि अधिक से अधिक धर्मात्मा व्यक्ति यीशु का भजन किये बिना मुक्ति का अधिकारी न हो सके या यीशु-यीशु कहकर पुकारते ही मनुष्य के कठिन से कठिन पाप भी दूर हो जायँ? ये सब मूर्खों को भुलावे में डालनेवाली बातें छोड़ दो। सभी धर्मों का लक्ष्य एक है। किसी भी धर्म की निन्दा करना उचित नहीं है। इससे कदाचित् स्वयं यीशु को भी सन्तोष न होगा। देखो, हिन्दू-धर्म कितना उदार है! हिन्दू-धर्म किसी भी धर्म की निन्दा नहीं करता। हिन्दू-धर्म की व्यवस्था के अनुसार तो किसी भी धर्म की निन्दा करना पाप है।

ब्रह्मा--बहुत अच्छा कहा भैया तुमने, बहुत अच्छा कहा।

श्रोताओं में से अधिकांश लोग युवक की इन बातों का समर्थन करने लगे। इससे मामला जमता न देखकर पादरी साहब दल-बल-सहित वहाँ से चलते बने। इधर क्षेत्र से निकलकर देवगण दारागंज में गये। वहाँ एक उपयुक्त स्थान देखकर उन सबने भोजन आदि की व्यवस्था की, उसके बाद अलोपीदेवी के दर्शन के निमित्त गये।

अलोपीदेवी की उत्पत्ति का विवरण बतलाते हुए वरुण ने कहा--

दक्ष-प्रजापति के यज्ञ के अवसर पर पति की निन्दा सुनकर सती ने जब प्राण-त्याग कर दिया तब देवादिदेव महादेव विक्षिप्त-से होकर वह मृत शरीर मस्तक पर लादे हुए तीनों लोकों में भ्रमण करने लगे। यह देखकर नारायण ने अपने चक्र से उस शव को बावन खण्डों में विभक्त कर दिया। बाद को एक-एक करके ये सभी खण्ड भिन्न-भिन्न स्थानों पर गिरे और ऐसे प्रत्येक स्थान पर आज भी देवी की एक-एक मूर्त्ति विराजमान है। प्रयाग में उनके दाहिने हाथ की उँगली गिरी थी, इसलिए यहाँ अलोपीदेवी हुईं।

अलोपीदेवी का दर्शन करने के बाद देवगण भारद्वाज आश्रम की ओर चले। सड़क के दोनों किनारों पर क़तार के क़तार वृक्ष लगे होने के कारण सन्ध्या के पूर्व एक अपूर्व छटा आगई थी। आश्रम में कई एक शिव-मन्दिर हैं। देवगण के वहाँ पहुँचने पर पंडों की युवती कन्यायें पैसों के लिए इतना तंग करने लगीं कि वे लोग भाग आने के लिए बाध्य हुए।

दूसरे दिन बी० एन० डब्ल्यू रेलवे के पुल के समीप दशाश्वमेध घाट पर स्नान करके देवगण वेणीमाधव के मन्दिर में गये। उसके बाद वे वासुकि के दर्शन के लिए गये। राजा वासुकि का मन्दिर एक बँधे हुए घाट पर बना हुआ है। मन्दिर को लपेटती हुई सर्प की एक बहुत बड़े आकार की मूर्त्ति बनाई गई है। राजा वासुकि का घाट एक बहुत ही उत्तम घाट है और नगर का सम्भवतः यह सर्वश्रेष्ठ घाट है, यद्यपि गङ्गा जी घाट से प्रायः दूर बहा करती हैं।

अब देवगण शिवकोटी की ओर चले। कहा जाता है कि वन जाते समय इन शिव की स्थापना करके श्रीरामचन्द्र जी ने इनकी पूजा की थी। इनका पूजन करने से कोटि शिव के पूजन का फल प्राप्त होता है, इसलिए ये शिवकोटी महादेव के नाम से प्रसिद्ध हैं।

शिवकोटी महादेव का दर्शन करने के बाद गङ्गा जी पर बना हुआ 'कर्ज़न ब्रिज' देखकर देवगण सीधे यमुनापुल की ओर चले। पुल के नीचे खड़े होकर वे लोग जिस समय उसके गुण-दोष

का वर्णन कर रहे थे, ठीक उसी समय खटाखट-खटाखट करती हुई एक गाड़ी निकल गई। देवगण एक दृष्टि से उसकी ओर ताकते रह गये।

वरुण——देखिए पितामह, यह पुल तीन भागों में बँटा हुआ है। ऊपर से वाष्पीय शकट आते-जाते रहते हैं। उसके नीचे मनुष्य तथा गो-यान और अश्व-यान-आदि के चलने की व्यवस्था है। उसके भी नीचे से जल-यान आते-जाते रहते हैं।

नारायण——आगरा में पितामह के समीप आकर यमुना क्यों रो रही थी, इसका अनुभव मैं अब कर सका हूँ। वह तीन स्थानों पर बन्धन का क्लेश सहन कर रही है——दिल्ली में, आगरा में और प्रयाग में। भारत में यमुना बहुत दिनों तक सुखपूर्वक विचरण कर चुकी है। इसके समान किसी और को भारतीय इतिहास का ज्ञान नहीं है। अनेक युद्ध इसने अपने नेत्रों से देखे हैं और भिन्न-भिन्न युद्धों में वीर-गति प्राप्त करनेवाले योद्धाओं के शवों का भी इसने वहन किया है। यहाँ तक कि एक बार वीर पुरुषों का रक्त शरीर में लपेटकर इसने बिलकुल रक्तवर्ण धारण कर लिया था। आज देखिए, वही यमुना भारतवासियों के समान ही स्वयं भी दुरवस्था को प्राप्त हो गई है। एक वह समय था जब कि यमुना के जल में भारतवर्ष की सुन्दरियाँ निर्भय होकर स्नान किया करती थीं। उनके चरणों के नूपुरों की ध्वनि से यमुना का तट मुखरित रहा करता था। आज वही यमुना शुष्कप्राय होकर मन्द गति से बह रही है ! आज रेल के चक्कों से यमुना का शरीर क्षत-विक्षत हो रहा है। पितामह, इस यमुना के तट पर ही मेरी मथुरा पुरी है। जिस समय मैं बाल-स्वभाव से प्रेरित होकर कदम्ब के वृक्ष पर जा बैठता और वंशी बजाने लगता, यह पगली यमुना उमड़कर सुनने के लिए आ पहुँचती। आज उसी यमुना की यह दुरवस्था देखकर मेरा हृदय द्रवित होता जा रहा है। विधाता, यमुना चिरकाल तक राजराजेश्वरी के रूप में रहने के बाद आज

दासी बन गई है। चिरकाल तक स्वाधीन रहने के बाद आज पराधीन हो गई है। इससे बढ़कर दुःख का विषय और क्या हो सकता है ?

मध्याह्न में भोजन आदि से निवृत्त होकर देवगण ख़ुसरूबाग़ देखने गये। वरुण ने कहा––पितामह, यह वाटिका अकबर के पुत्र ख़ुसरू ने लगवाई है। वाटिका की जो इतनी ऊँची चहारदीवारी है, वह क़िला बनने के बाद बची हुई सामग्री से बनाई गई है। एक बहुत बड़े फाटक से होकर देवगण ने भीतर प्रवेश किया और ख़ूब चौड़ी पक्की सड़क से होकर चारों ओर घूम-घूमकर पेड़-पौधे देखने लगे। मनोरम वाटिका, पानी का कल तथा वाटिका के भीतर बने हुए मक़बरे आदि देखकर देवगण स्थान को लौटे आ रहे थे। रास्ते में एक बंगाली युवक को देखकर पितामह एकाएक उसका नाम-धाम पूछ बैठे।

बंगाली युवक ने कहा––महाराज, मेरा नाम है निशिकान्त सेन। जाति का मैं वैद्य हूँ। मैं यहाँ रेलवे के आफ़िस में क्लर्क हूँ।

युवक की इस बात से ब्रह्मा बहुत अप्रसन्न हुए। उन्होंने कहा–– वैद्य-जाति में जन्म ग्रहण करके भी नौकरी करने के लिए तुम जन्म-भूमि से इतनी दूर प्रयाग दौड़े आये हो ? वहीं पड़े-पड़े गोली-चूरन बेंच-बेंचकर भी तो तुम पेट पाल सकते थे। देशवासियों की चिकित्सा के ही लिए तुम लोगों की सृष्टि हुई है, किन्तु अपने व्यवसाय का परित्याग करके अपने लिए नरक का रास्ता प्रशस्त करते जा रहे हो। विलायती पानी पी-पी कर जो इतने लोगों को नरकगामी होना पड़ रहा है, उसका फल तो तुम लोगों को भोगना ही पड़ेगा, साथ ही चिकित्सा के अभाव के कारण जो कितने आदमी अकाल में ही काल के गाल में चले जाते हैं, उसके लिए भी यम की अदालत में तुम्हें दण्ड स्वीकार करना पड़ेगा।

अन्त में हाईकोर्ट, प्रयाग-विश्वविद्यालय तथा आलफ़्रेड पार्क आदि देखकर देवगण प्रयाग से प्रस्थान करने का विचार करने लगे।

आलफ़्रेड पार्क में बने हुए थार्नहिल मेमोरियल, विशेषतः पब्लिक लाइब्रेरी की, प्रशंसा किये बिना वे न रह सके, यद्यपि लाइब्रेरी में अँगरेजी भाषा की पुस्तकों की तुलना में देवभाषा संस्कृत की पुस्तकें नहीं के बराबर ही मालूम पड़ीं। हाईकोर्ट से विश्वविद्यालय की ओर आते समय उन्होंने मेयोहाल भी देख लिया था।

देवगण ताँगे पर सवार होकर जब आलफ़्रेड पार्क से निकलने लगे, तब ताँगेवाले ने पूछा--बाबा जी, क्या मिंटोपार्क भी ले चलूँ? क़िले के समीप यमुना जी के तट पर बना हुआ होने के कारण यह पार्क बहुत ही मनोरम है। इस पार्क में एक स्तम्भ पर महारानी विक्टोरिया की घोषणा खुदी हुई है। परन्तु समयाभाव के कारण वे वहाँ न जाकर सीधे स्टेशन गये। यथा-समय टिकट लेकर देवगण मिर्ज़ापुर की गाड़ी पर सवार हुए। प्रयाग से चलते समय देवगण को इस बात का खेद रहा कि गमनागमन की सुविधाजनक व्यवस्था न होने के कारण वे शृङ्गवेरपुर, पाण्डेश्वर महादेव, दुर्वासा-आश्रम तथा सुजावन देवता और कौशाम्बी आदि महत्त्वपूर्ण स्थानों को न देख सके।

मिर्ज़ापुर

प्रयाग से चलकर देवगण मिर्ज़ापुर पहुँचे। स्टेशन पर उतरकर पत्थर के एक क़िले के पास से होते हुए वे लोग जाकर चौक पहुँचे और वहाँ अगणित दूकानें देखकर स्नान के निमित्त गङ्गा जी की ओर चले। गङ्गा जी के तट पर पहुँचकर उन्होंने देखा कि पत्थर के कई अच्छे-अच्छे घाट बने हुए हैं। जल में उस समय कई नौकायें तैर रही थीं। उन नौकाओं में से किसी-किसी पर बैठकर मुसलमान मल्लाह भात खा रहे थे। किसी-किसी नौका का कड़कड़ शब्द करके पाल खोला जा रहा था और किसी-किसी का आधा खुला हुआ पाल हवा के वेग से फटाफट कर रहा था। नारायण एक दृष्टि से

उन नौकाओं की ओर देखते रहे । अन्त में वरुण से उन्होंने विभिन्न आकार-प्रकार की नौकाओं का विवरण पूछा ।

ब्रह्मा ने कहा--नारायण, तुम इस प्रकार एक दृष्टि से नौकाओं की ओर क्यों ताक रहे हो ? चलो, जल्दी से स्नान से निवृत्त हो लें।

इन्द्र--यहाँ काष्ठ इतनी अधिक मात्रा में क्यों रक्खा हुआ है ?

वरुण--काष्ठ की बिक्री का यह एक बहुत बड़ा केन्द्र है। यहाँ ख़रीदने पर दाम में भी किफ़ायत होती है ।

इन्द्र--मुझे अपनी बैठक की छत बदलवानी है। इसलिए दस-बीस कड़ियों की आवश्यकता पड़ेगी। क्या यहाँ से ले जाने में कुछ सुविधा होगी ?

स्नान के निमित्त जल में प्रवेश करते समय वरुण ने कहा--मिर्ज़ापुर में चोरों का बड़ा उपद्रव है। इसलिए यह अधिक अच्छा होगा कि हम लोगों में से कोई आदमी सामान आदि देखता रहे, और लोग स्नान करें।

पितामह ने कहा--घाट पर आदमी तो कोई वैसा है नहीं, क्या एक बार डुबकियाँ लगाते भर में ही कोई सामान उठा ले जायगा ? इतना कहकर वे स्नान के निमित्त आगे बढ़े कि आँखें मूँदकर ध्यान लगाये हुए एक संन्यासी की ओर उनकी दृष्टि गई। अब उन्होंने सारी चीज़ें उस संन्यासी के पास रखने का वरुण आदि को आदेश करके कहा--महाराज, हमारी इन चीज़ों की ओर भी ज़रा दृष्टि रखिएगा। कुछ मुस्कराहट के साथ मस्तक हिलाकर संन्यासी ने अपनी सहमति प्रकट की । अब देवगण जल में प्रवेश करके निश्चिन्त भाव से अँगौछे से शरीर को मलने लगे। धूर्त संन्यासी को इससे बहुत ही अनुकूल अवसर मिल गया। एक बड़ी-सी गठरी लेकर वह चम्पत हुआ।

स्नान से निवृत्त होने पर देवगण ने देखा तो संन्यासी वहाँ नहीं था। सामान की ओर ध्यान जाने पर उन्हें मालूम हुआ कि नारायण

आगरा से जो दरी, ग़लीचा आदि ख़रीद ले आये थे, वह सब नहीं है। इससे वे दंग रह गये। क्रोध में आकर उन्होंने कहा--इस पाजी ने मेरे ही ऊपर हाथ साफ़ कर दिया ?

आश्चर्य में आकर ब्रह्मा ने कहा--वरुण, यह कैसी बात है? संन्यासी के वेश में भी चोर! साधु के वेश में भी असाधु!! तब तो आदमी को पहचानना बड़ा कठिन है।

वरुण ने कहा--भाग्य से ही रुपयोंवाले बक्स में उसने हाथ नहीं लगाया, अन्यथा कलकत्ता जाने की बात हवा हो जाती।

यहाँ से देवगण भोगमाया के दर्शन के निमित्त चले। वहाँ पहुँचते ही कई एक संड-मुसंड पंडों ने आकर इन्हें घेर लिया। उन्हें देखते ही देवगण की आत्मा सूख गई। उन्होंने मन में यही स्थिर किया कि ये सब पूरे डाकू हैं।

वरुण ने कहा--पितामह, पीतल के खम्भों से घिरे हुए इस सङ्कीर्ण गृह में देवी की जो मूर्त्ति है, वह भोगमाया की है। देखिए, मन्दिर के चारों ओर देवी की और भी कितनी मूर्तियाँ हैं।

पंडे लोग पैसे के लिए बहुत परेशान कर रहे थे, इससे देवगण ने मन्दिर में नहीं प्रवेश किया। किराये की एक गाड़ी पर बैठकर वे लोग विन्ध्याचल में अधिष्ठित योगमाया के दर्शन के निमित्त चले।

विन्ध्याचल

प्रयाग से आते समय देवगण मिर्ज़ापुर न जाकर विन्ध्याचल में ही उतरना चाहते थे, परन्तु जिस गाड़ी से वे आये थे, वह वहाँ नहीं रुकती थी, इससे मिर्ज़ापुर में ही उतरने के लिए बाध्य होना पड़ा। अब मिर्ज़ापुर से चलने पर दूर से ही विन्ध्यपर्वत देखकर ब्रह्मा ने कहा--वरुण, यदि इस पर्वत पर योगमाया रहती हैं तब आगे न

बढ़कर यहीं से लौट चलना ठीक होगा। इतना जीर्ण शरीर लेकर देव-दर्शन के निमित्त पर्वत पर तो मुझसे चढ़ा न जायगा।

वरुण—जी नहीं, चढ़ने में किसी प्रकार का क्लेश न होगा। देवी जी के एक भक्त ने बहुत-सा रुपया ख़र्च करके एक सीढ़ी बनवा दी है।

क्रमशः गाड़ी आकर सीढ़ी के पास खड़ी हुई। देवगण एक-दूसरे का हाथ पकड़कर ऊपर चढ़ने लगे। अन्त में आकर वे मन्दिर के पास पहुँच गये। आस-पास बैठकर पण्डित लोग पाठ कर रहे थे।

ब्रह्मा ने कहा—इस मूर्त्ति की स्थापना किसने की है?

वरुण ने कहा—जिस समय श्रीकृष्ण ने देवकी के आठवें गर्भ से जन्म ग्रहण किया था, ठीक उसी समय महामाया भी यशोदा के गर्भ से उत्पन्न हुई थीं। श्रीकृष्ण के अवतार ग्रहण करते ही वसुदेव को यह आकाशवाणी सुनाई पड़ी कि तुम इस रात्रि के समय में ही अपने पुत्र को यशोदा के सूतिकागृह में रखकर उनकी कन्या उठा ले आओ। आकाशवाणी सुनते ही वसुदेव कारागार से निकल पड़े और उपर्युक्त प्रकार सन्तान-विनिमय करके लौट आये। कारागार में आते ही महामाया ने चिल्ला-चिल्लाकर रोना आरम्भ किया। रोने का शब्द सुनकर पहरेदारों ने कंस को सूचना दी कि देवकी को सन्तान हुई है। कंस ने आकर देखा कि इस बार देवकी को पुत्र न होकर कन्या हुई है। इससे वे सोचने लगे—देवर्षि नारद ने तो यह कहा था कि देवकी के आठवें गर्भ से जो पुत्र उत्पन्न होगा, वही मेरा अन्त करेगा। परन्तु इस बार तो पुत्र न होकर कन्या हुई है। निरर्थक इसका वध करने से क्या लाभ होगा? परन्तु क्षण भर में उसके मन में फिर यह बात आई कि शत्रु कैसा भी हो, वह उपेक्षा का पात्र नहीं है। उसका अन्त कर डालना ही उचित है। यह सोचकर कारागार में प्रवेश करके उसने उस तत्काल ही उत्पन्न हुई कन्या को उठा लिया और ज़ोर से पत्थर पर पटककर मार

डालने का उद्योग किया। परन्तु हँसते-हँसते वे शून्य में अदृश्य हो गईं। जाते समय उन्होंने इस मूर्ति में विश्राम किया था।

योगमाया को भक्तिपूर्वक प्रणाम करके देवगण चारों ओर ताकने लगे। इन्द्र ने कहा--वरुण, योगमाया के दक्षिण ओर जो सुरंग दिखाई पड़ रही है, वह क्या है?

वरुण--पण्डों का कहना है कि योगमाया इसी सुरंग से होकर आविर्भूत हुई थीं।

देवगण को लेकर ब्रह्मा अब संहारमाया के दर्शन के निमित्त चले। महाकाली की यह मूर्ति यहाँ से लगभग आध कोस की दूरी पर है। लगभग डेढ़ सौ सीढ़ियाँ चढ़ने के बाद देवी की उस मूर्ति के पास देवगण पहुँचे। संहारमाया की भयंकर मूर्ति का दर्शन करते समय वे लोग अकस्मात् भय का अनुभव करने लगे। नारायण ने कहा--मुख-विवर तो इतना विशाल है कि मानो पर्वत का कोई छोटा गह्वर है।

वरुण--पितामह, आपको यह स्मरण होगा कि एक बार दैत्य लोगों ने जब दल-बल-सहित स्वर्ग, मर्त्य और पाताल पर पूर्णरूप से अधिकार करके घोर अत्याचार करना आरम्भ किया तब हम लोगों ने भगवती की शरण ली। हमारी स्तुति से प्रसन्न होकर भगवती ने हमें अभय दान किया और वे स्वयं मोहिनी-रूप में शुम्भ नामक दैत्य की वाटिका में आकर उपस्थित हुईं। शुम्भ की वह वाटिका इसी स्थान पर थी। धूम्रलोचन के मुख से उस रूप की प्रशंसा सुनकर दैत्यवंश पतिङ्गों की तरह दौड़ पड़ा और सौन्दर्यरूपी अग्नि में वह कूदने लगा। जो मूर्त्ति धारण करके भगवती ने शुम्भ का वध किया था; वह संहारमूर्त्ति यही है।

यह कथा श्रवण करने पर देवगण के शरीर में रोमाञ्च हो आया। देवी को बार-बार प्रणाम करके वे लोग स्तुति करने लगे। अन्त में वहाँ से प्रस्थान करते समय नाथ जी नामक एक साधु की

समाधि की ओर संकेत करके वरुण ने कहा—नाथ जी यहीं बैठकर तपस्या किया करते थे। यहाँ कोई दूसरा आदमी नहीं तपस्या कर सकता। जिस किसी ने प्रयत्न किया है, उसी के सामने भयंकर बाधा उपस्थित हुई है और वह इस योग्य नहीं रह गया कि तपस्या कर सके। अस्तु, उसके बाद उन लोगों ने विन्ध्याचल से प्रस्थान किया। मुग़लसराय से होते हुए वे लोग सिकरौल पहुँचे।

काशी

सिकरौल स्टेशन पर उतरने के बाद देवगण ने किराये की एक गाड़ी की और जगतगंज से होते हुए वे सीधे चौक पहुँचे। वहाँ गाड़ी से उतकर पतली-पतली गलियों में चक्कर काटते हुए वे मणिकर्णिका घाट पर पहुँचे। वृद्ध पितामह का हाथ पकड़े हुए नारायण उन्हें जल के समीप ले गये। चिल्लू में थोड़ा-सा गङ्गाजल लेकर पितामह ने मस्तक से लगाया और विह्वल-भाव से कहने लगे—आह! कृतार्थ हो गया। गङ्गे, आओ बेटी, इस कमण्डलु में आ जाओ। इतना कहकर पितामह रोने लगे। उस समय ममता ने उन्हें इतना अभिभूत कर रक्खा था कि उनके आँसू किसी प्रकार बन्द ही नहीं होते थे।

पितामह की यह अवस्था देखकर वरुण ने कहा—आप यह क्या कर रहे हैं? मृत्युलोक में आकर आप पागल तो नहीं हो गये हैं?

ब्रह्मा ने किसी प्रकार अपने को सँभालकर कहा—वरुण, सच-सच बतलाओ भैया, बेटी गङ्गा को इतना पुकारता हूँ मैं, परन्तु वह मुझे दिखाई नहीं पड़ती। उसका किसी प्रकार का अनिष्ट तो नहीं हुआ है?

वरुण—गङ्गा का भला क्या अनिष्ट होगा?

ब्रह्मा—अनिष्ट की बात मत पूछो भाई, मृत्युलोक में कितने तो पानी

के कल हैं, कितने बड़े-बड़े पुल हैं। आश्चर्य नहीं कोई उसे किसी कल के घर में बन्द किये हो या किसी पुल की कोठी में रोक रक्खा हो। भगीरथ ने भी यह कितना बड़ा अन्याय किया है कि बेचारी गङ्गा को देश भर में दौड़ाया है। एक स्थान पर रक्खे होते तब मैं खोज भी लेता उसे।

वरुण--आप चिन्ता न कीजिए, जहाँ कहीं भी सम्भव होगा, गङ्गा से मैं आपकी मुलाक़ात करा दूँगा।

विधाता की यह अवस्था देखकर स्नान के निमित्त आई हुईं कुछ स्त्रियाँ एकत्र हो आईं। एक स्त्री ने कहा--शायद यह आदमी पागल है। दूसरी ने कहा--नहीं, पागल नहीं है। बुढ़ाई का शरीर है, निर्बलता के कारण दिमाग़ पर गर्मी चढ़ आई है। तीसरी ने कहा--जी नहीं, साफ़-साफ़ पागल है। दिमाग़ इसका ठिकाने पर होता तो इस तरह व्याकुल-भाव से गङ्गा-गङ्गा करके रो-रोकर मरता !

गङ्गापुत्र ने स्टेशन से ही देवगण का पल्ला पकड़ रक्खा था। उसने यह भी कह रक्खा था कि स्नान के समय यदि हम मन्त्र न पढ़ावेंगे तो स्नान का कुछ फल ही न प्राप्त होगा। परन्तु जब वे लोग गङ्गा जी में प्रवेश करके गले भर जल में खड़े हुए तब वह किसी प्रकार मन्त्र का उच्चारण ही नहीं करता था। केवल दक्षिणा की ही बात वह बार-बार मुँह से निकालता और कहता कि संकल्प कर लो कि हम लोग इतना-इतना देंगे। अन्त में बहुत ही झुँझलाहट के साथ नारायण ने कहा--देखो, हम लोग एक-एक अधेला देंगे। तुम्हारी इच्छा हो तो मन्त्र पढ़ो, नहीं तो मेरी बला से। इतना कहकर उन्होंने दन से डुबकी लगा ली। यह देखकर गङ्गापुत्र ने सोचा कि एक आदमी तो हाथ से निकल ही गया, कहीं और लोग भी इसी का अनुसरण न करें। इससे जो मिल रहा है, वही बहुत है। यह सोचकर वह मन्त्र पढ़ने लगा।

ब्रह्मा--एक समय विष्णु ने चक्र के द्वारा एक पुष्करिणी खोदी।

बग्गी खींचनी होगी। इसलिए तुम जब तक जीवित रहो, तब तक ज़रा-ज़रा-से दाना-पानी से संतोष करके इस कार्य में लगे रहो। किसलिए व्यर्थ में डंडे की चोट खा-खाकर यन्त्रणा सहन कर रहे हो? जब तक यमराज का निमंत्रण तुम्हारे पास तक न पहुँच पावेगा तब तक तुम्हारा पिंड छूटने का नहीं है।

क्रमशः देवगण त्रिवेणी के तट पर पहुँच गये। वहाँ पहुँचकर उन्होंने देखा कि क्षेत्र की बालुका-राशि पर एक सुन्दर-सा नगर बसा हुआ है। नाई लोग बग़ल में किस्बत दबाये और हाथ में लोटा लिये हुए प्रसन्न-भाव से इधर-उधर दौड़ रहे हैं। उन्हें देखकर ब्रह्मा ने कहा—वरुण, ये लोग कौन हैं? इतने प्रसन्न ये क्यों दिखाई पड़ रहे हैं?

वरुण ने कहा—ये सब प्रयाग के नापित हैं। माघ मास में इन लोगों की ख़ूब बन आती है। यात्रियों के मस्तक पर छूरे चला-चलाकर ये लोग इस एक महीने में काफ़ी रुपये कमा लेते हैं। इस वर्ष यात्री कुछ अधिक संख्या में आगये हैं, इससे ये लोग अधिक प्रसन्न हैं।

संगम के समीप ही बने हुए प्रयाग के सुप्रसिद्ध क़िले की ओर संकेत करके देवराज ने कहा—वरुण, यह क्या दिखाई पड़ रहा है?

वरुण—यह इलाहाबाद-फ़ोर्ट—क़िला है। सिपाही-विद्रोह के समय यह क़िला बहुत ही विकराल रूप का हो गया था। अँगरेज़ लोग इस क़िले की बहुत ही प्रशंसा किया करते हैं।

इन्द्र—इसका निर्माण किसने करवाया था?

वरुण—बहुत दिन पहले हिन्दू राजाओं के द्वारा इसका निर्माण हुआ था। बाद को इसका ध्वंस हो गया था। केवल चहारदीवारी ही बची हुई थी। अन्त में अकबर ने नये सिरे से इसका निर्माण करवाया। आजकल यह अँगरेज़ों के अधिकार में है। इस प्रकार हिन्दू, मुसलमान और अँगरेज़, इन तीन जातियों का इस पर आधिपत्य रहा और

इसके निर्माण में तीनों ही जातियों की रुचि का योग है। क़िले के भीतर अक्षय-वट और एक शिव-लिंग है।

चलो, हम लोग अक्षय-वट देख आवें, यह कहकर विधाता देवगण को लिये हुए क़िले की ओर चले। रास्ते में उन्हें एक साहब दिखाई पड़ा। जिसके पीछे-पीछे कई हिन्दुस्तानी चले आ रहे थे। पूछ-ताछ करने पर मालूम हुआ कि साहब एक पादरी है और जो लोग उसके पीछे-पीछे चल रहे हैं, वे सब अभी हाल में 'ईसाई-धर्म' की दीक्षा ग्रहण करने के बाद अन्धकार से प्रकाश में आये हैं। ये हिन्दुस्तानी या नव-दीक्षित ईसाई अर्थाभाव के कारण मैले-कुचैले कपड़े पहने हुए थे। शरीर में भी इनके ऐसा लावण्य नहीं था। बग़ल में ये सब थोड़ी-थोड़ी-सी किताबें दबाये हुए थे। देखने पर जान पड़ता था कि शायद ये फेरी-वाले हैं और किताबें बेचने के लिए निकले हुए हैं। ये पुस्तकें ख़ूब उदारतापूर्वक वितरित की जा रही थीं। नारायण भी दौड़कर एक पुस्तक माँग ले आये।

वरुण—नारायण, फेंक दो यह पुस्तक, फेंक दो। इसे फेंककर प्रयाग में मस्तक मुंड़वाओ। ईसाई-धर्म की पुस्तक तुमने कैसे छू ली? जानते हो तुम? देवतागण यदि यह बात जान पायेंगे, तो तुमसे प्रायश्चित्त करवाये बिना न रहेंगे।

नारायण—यह क्या ईसाई-धर्म की पुस्तक है? मुझे तो मालूम नहीं था। कल रात्रि में तम्बाकू लपेटने में असुविधा मालूम पड़ रही थी, इससे मैंने इसे ले लिया था।

ब्रह्मा—नहीं, तुम इसे फेंक दो। क्यों वरुण, क्या वे लोग गङ्गा-स्नान के निमित्त आये हैं?

वरुण—जी नहीं। ये लोग मेले में प्रायः दिखाई पड़ते हैं और हिन्दू-धर्म की निन्दा करके लोगों को ईसाई बनाने का प्रयत्न किया करते हैं।

देवगण के क़िले में प्रवेश करने पर वरुण ने कहा—यह क़िला नगर से दूर मैदान में बना हुआ है और मैदान के ऐसे कोने पर बना

हुआ है, जहाँ पर गङ्गा और यमुना एक-दूसरे से मिलती हैं। उधर देखिए, वह बादशाह अकबर का राजभवन है। उस राजभवन से स्नान के निमित्त जल में उतरने के लिए जो सीढ़ी बनी थी, वह आज भी बनी हुई है। इसी सीढ़ी पर बैठकर पहले मुग़ल-रमणियाँ स्नान किया करती थीं। अक्षयवट देखकर ब्रह्मा ने कहा--इस वृक्ष को देखकर मुझे सन्देह होता है कि पंडों ने एक बनावटी वृक्ष लगा रक्खा है।

इन्द्र--इसमें कोई आश्चर्य नहीं है। मृत्युलोक के निवासी आजकल धन के इतने लोभी हो गये हैं कि पुण्य का लोभ दिखलाकर दूसरों से पैसे ऐंठना उनके लिए कोई वैसी बात नहीं रह गई है। भीम की गदा देखकर देवगण त्रिवेणी जी के क्षेत्र में लौट आये।

क्षेत्र में अगणित नाई, पंडे, घाटिया, भिक्षुक आदि यात्रियों के कपड़े तक छीन लेने पर उतारू थे। सभी पंडे थोड़ा-थोड़ा-सा स्थान अपने अधिकार में किये हुए बैठे थे और अपनी-अपनी चौकी के पास अपना-अपना झंडा गाड़े हुए थे। देखने में ऐसा जान पड़ता कि मानो यह स्थान कोई बन्दरगाह है और अँगरेजों, डचों तथा फ़्रांसिसियों आदि के व्यापारिक जहाज़ खड़े होकर अपनी-अपनी पताका उड़ा रहे हैं। घाट पर भी बड़ा कोलाहल था। कोई-कोई लोग तो स्नान से निवृत्त होकर पूजा कर रहे थे, कोई मुण्डन करवा रहे थे और किसी-किसी की पंडों के साथ दक्षिणा के सम्बन्ध में वाक्-कलह के साथ ही साथ हाथापाई तक की नौबत आ रही थी। किसी-किसी के हाथ से भिक्षुकगण पैसे ही छीने ले रहे थे।

भीड़ से होकर विधाता जल के पास जाकर उपस्थित हुए और उच्च स्वर से बोले--गङ्गे, पतित-पावनि, आओ मा, एक बार फिर मेरे कमण्डलु में आ जाओ।

इतना कहकर पितामह रोने लगे। यह देखकर वरुण ने कहा--यह क्या कर रहे हैं आप? क्या आप चाहते हैं कि सब लोगों को मालूम

हो जाय कि आप कौन हैं? आप घबराते क्यों हैं ? जहाँ कहीं भी सम्भव होगा, मैं आपसे उनकी मुलाक़ात करा दूँगा।

नारायण--इनके कारण तो मामला बड़ा ही गड़बड़ हो रहा है। कहीं पुलिसवाले पकड़कर इन्हें पागलख़ाने में न डाल दें।

इतने में नाई आया और छुरा चमकाने लगा। विधाता ने कहा--तुम लोग मुण्डन करवाकर स्नान कर लो।

नारायण--मस्तक के बाल तो मुझसे न बनवाये जायँगे।

ब्रह्मा--नारायण क्या कह रहे हो तुम ? मृत्युलोक की हवा में आकर क्या तुम भी नास्तिक हो गये हो? तीर्थ का जो माहात्म्य है, उसके अनुसार कार्य करो।

नारायण--मुझसे तो भाई यह न हो सकेगा। आप ज्येष्ठ हैं, आपने मुण्डन करवा लिया तो समझ लीजिए कि हमने भी करवा लिया। दक्षिणा के रूप में नापित महोदय को कुछ दे देने में अवश्य मुझे कोई आपत्ति नहीं है।

"तुम लोगों की जो इच्छा हो, वही करो। इसी प्रकार तो उत्तरोत्तर हिन्दुत्व का नाश होता जा रहा है।"

इतना कहकर ब्रह्मा मुण्डन कराने लगे। गङ्गा के वियोग के कारण उनके दोनों नेत्रों से आँसू बह रहे थे। इतने में पादरी साहब भी अपना दल लिये हुए उनके पास आ पहुँचे। उन्होंने कहा--बुड्ढा, टुम गङ्गा-गङ्गा करके रोटा है! कितना अफ़सोस है! वह टो पानी है। वह क्या टुमको डर्शन डेगा। इतना कहकर वह चला गया।

इन्द्र--साहब तो अच्छा रंग झाड़ गया। अच्छा वरुण, इस कीचड़ में किसकी मूर्त्ति पड़ी है ?

वरुण--यह हनूमान् की मूर्त्ति है। जान पड़ता है कि हनूमान् के मन में अहङ्कार बहुत अधिक था। उन्होंने यह सोच रक्खा था कि संसार में मेरे समान कोई और वीर नहीं है, मेरे सिवा और कौन इतना शक्तिशाली हो सकता है जो इस अजेय समुद्र पर सेतु का निर्माण कर सके।

परन्तु जब से उन्होंने यमुना का पुल देखा है, तब से उनकी बुद्धि ठिकाने पर आई है। अब उन्होंने अनुभव किया कि संसार में मैं ही सब कुछ नहीं हूँ, मेरे भी दादा हैं। इसलिए व्यर्थ का अहङ्कार करके मैंने जो पाप किया है, उसके प्रायश्चित्त के लिए प्रयाग में मुण्डन करवाना चाहिए। अन्त में मुण्डन करवा चुकने पर भी जब उनके मन की ग्लानि न दूर हुई तब यहीं कीचड़ में वे पड़ गये। इस प्रकार पड़े-पड़े वे पश्चात्ताप कर रहे हैं।

स्नान से निवृत्त होकर तट पर आने पर देवगण ने देखा तो पादरी साहब खड़े होकर व्याख्यान दे रहे थे और बहुत-से अशिक्षित आदमी उन्हें घेरकर खड़े थे। साहब कह रहे थे--हाय, इससे बढ़कर अफ़सोस की बाट और क्या हो सकटी है कि जो जल एक साधारण जल है, उसे टुम हिन्डू लोग डेवटा मानकर पूजटे हो, उसके सामने माठा मुँडाटे हो। यह गुनाह है। अब टुम लोग इस अंढकार से निकलो। रोशनी में आओ। प्रभु यीशु से क्षमा माँगो। वे टुम्हारा उड्ढार करेंगे।

समीप ही कोई हिन्दू युवक खड़ा था। उतावली के साथ बढ़कर उसने एक ईसाई का हाथ पकड़ लिया और बोला--भाई साहब, क्या तुम लोग रोशनी में आगये हो?

मस्तक हिलाते हुए ईसाई ने कहा--कुछ-कुछ।

नारायण--साहब हिन्दी अच्छी बोलता है। भूल केवल इतनी करता है कि त के स्थान पर ट और द के स्थान पर ड कह जाता है।

पादरी--भाइयो, ईश्वर ने इस जगह पर इटना प्रेम किया कि अपने अकेले बेटे यीशु को भी जगट में भेज डिया। जो कोई अपने पापों के लिए मन में डुखी होकर उनकी शरण में जायगा, उसका वे उड्ढार कर डेंगे। यीसू ने जगट के पाप के लिए अपने प्राण डिये। अपना रकट डेकर उन्होंने जगट का उड्ढार किया। टुम लोग उन्हीं प्रभु को सडा भजो। उनको छोड़कर टुम लोग का पाप-टाप और कोई न डूर कर सकेगा। और डेखो--

ऊपर जिस हिन्दू युवक का उल्लेख किया जा चुका है, वह झट

से बोल उठा--देखिए साहब, मैं भी यीशु के प्रति भक्ति करता हूँ। वे वास्तव में एक महापुरुष थे। परन्तु उनके अतिरिक्त जीव को मुक्ति प्रदान करनेवाला और कोई है ही नहीं, इस बात पर मैं विश्वास नहीं कर सकता। जो कोई व्यक्ति शुद्ध अन्तःकरण से ईश्वर का भजन करेगा, जो वास्तव में उसे प्राप्त करने के लिए व्याकुल हो उठेगा, वह उसे पाकर ही रहेगा। भगवान् उसे अपने क्रोड में आश्रय दिये बिना न रहेंगे। और विषयों में भाग्य का भरोसा किया जा सकता है, किन्तु धर्म के सम्बन्ध में भाग्य का आश्रय लेना सम्भव नहीं होता। यदि पाप के लिए हृदय में वास्तविक पश्चात्ताप उपस्थित होता है तब राम, कृष्ण, यीशु और मुहम्मद आदि किसी को भी पुकारने की आवश्यकता नहीं होती। मुक्ति स्वयं प्राप्त हो जाती है। क्या तुम ईश्वर को इतना पक्षपाती समझते हो, जो वह इतना असङ्गत विधान बना देगा कि अधिक से अधिक धर्मात्मा व्यक्ति यीशु का भजन किये बिना मुक्ति का अधिकारी न हो सके या यीशु-यीशु कहकर पुकारते ही मनुष्य के कठिन से कठिन पाप भी दूर हो जायँ? ये सब मूर्खों को भुलावे में डालनेवाली बातें छोड़ दो। सभी धर्मों का लक्ष्य एक है। किसी भी धर्म की निन्दा करना उचित नहीं है। इससे कदाचित् स्वयं यीशु को भी सन्तोष न होगा। देखो, हिन्दू-धर्म कितना उदार है! हिन्दू-धर्म किसी भी धर्म की निन्दा नहीं करता। हिन्दू-धर्म की व्यवस्था के अनुसार तो किसी भी धर्म की निन्दा करना पाप है।

ब्रह्मा--बहुत अच्छा कहा भैया तुमने, बहुत अच्छा कहा।

श्रोताओं में से अधिकांश लोग युवक की इन बातों का समर्थन करने लगे। इससे मामला जमता न देखकर पादरी साहब बल-बल-सहित वहाँ से चलते बने। इधर क्षेत्र से निकलकर देवगण दारागंज में गये। वहाँ एक उपयुक्त स्थान देखकर उन सबने भोजन आदि की व्यवस्था की, उसके बाद अलोपीदेवी के दर्शन के निमित्त गये।

अलोपीदेवी की उत्पत्ति का विवरण बतलाते हुए वरुण ने कहा--

दक्ष-प्रजापति के यज्ञ के अवसर पर पति की निन्दा सुनकर सती ने जब प्राण-त्याग कर दिया तब देवाधिदेव महादेव विक्षिप्त-से होकर वह मृत शरीर मस्तक पर लादे हुए तीनों लोकों में भ्रमण करने लगे। यह देखकर नारायण ने अपने चक्र से उस शव को बावन खण्डों में विभक्त कर दिया। बाद को एक-एक करके ये सभी खण्ड भिन्न-भिन्न स्थानों पर गिरे और ऐसे प्रत्येक स्थान पर आज भी देवी की एक-एक मूर्त्ति विराजमान है। प्रयाग में उनके दाहिने हाथ की उँगली गिरी थी, इसलिए यहाँ अलोपीदेवी हुईं।

अलोपीदेवी का दर्शन करने के बाद देवगण भारद्वाज आश्रम की ओर चले। सड़क के दोनों किनारों पर क़तार के क़तार वृक्ष लगे होने के कारण सन्ध्या के पूर्व एक अपूर्व छटा आगई थी। आश्रम में कई एक शिव-मन्दिर हैं। देवगण के वहाँ पहुँचने पर पंडों की युवती कन्यायें पैसों के लिए इतना तंग करने लगीं कि वे लोग भाग आने के लिए बाध्य हुए।

दूसरे दिन बी० एन० डब्ल्यू रेलवे के पुल के समीप दशाश्वमेध घाट पर स्नान करके देवगण वेणीमाधव के मन्दिर में गये। उसके बाद वे वासुकि के दर्शन के लिए गये। राजा वासुकि का मन्दिर एक बँधे हुए घाट पर बना हुआ है। मन्दिर को लपेटती हुई सर्प की एक बहुत बड़े आकार की मूर्त्ति बनाई गई है। राजा वासुकि का घाट एक बहुत ही उत्तम घाट है और नगर का सम्भवतः यह सर्वश्रेष्ठ घाट है, यद्यपि गङ्गा जी घाट से प्रायः दूर बहा करती हैं।

अब देवगण शिवकोटी की ओर चले। कहा जाता है कि वन जाते समय इन शिव की स्थापना करके श्रीरामचन्द्र जी ने इनकी पूजा की थी। इनका पूजन करने से कोटि शिव के पूजन का फल प्राप्त होता है, इसलिए ये शिवकोटी महादेव के नाम से प्रसिद्ध हैं।

शिवकोटी महादेव का दर्शन करने के बाद गङ्गा जी पर बना हुआ 'कर्जन ब्रिज' देखकर देवगण सीधे यमुनापुल की ओर चले। पुल के नीचे खड़े होकर वे लोग जिस समय उसके गुण-दोष

का वर्णन कर रहे थे, ठीक उसी समय खटाखट-खटाखट करती हुई एक गाड़ी निकल गई। देवगण एक दृष्टि से उसकी ओर ताकते रह गये।

वरुण--देखिए पितामह, यह पुल तीन भागों में बँटा हुआ है। ऊपर से वाष्पीय शकट आते-जाते रहते हैं। उसके नीचे मनुष्य तथा गो-यान और अश्व-यान-आदि के चलने की व्यवस्था है। उसके भी नीचे से जल-यान आते-जाते रहते हैं।

नारायण--आगरा में पितामह के समीप आकर यमुना क्यों रो रही थी, इसका अनुभव मैं अब कर सका हूँ। वह तीन स्थानों पर बन्धन का क्लेश सहन कर रही है--दिल्ली में, आगरा में और प्रयाग में। भारत में यमुना बहुत दिनों तक सुखपूर्वक विचरण कर चुकी है। इसके समान किसी और को भारतीय इतिहास का ज्ञान नहीं है। अनेक युद्ध इसने अपने नेत्रों से देखे हैं और भिन्न-भिन्न युद्धों में वीर-गति प्राप्त करनेवाले योद्धाओं के शवों का भी इसने वहन किया है। यहाँ तक कि एक बार वीर पुरुषों का रक्त शरीर में लपेटकर इसने बिलकुल रक्तवर्ण धारण कर लिया था। आज देखिए, वही यमुना भारतवासियों के समान ही स्वयं भी दुरवस्था को प्राप्त हो गई है। एक वह समय था जब कि यमुना के जल में भारतवर्ष की सुन्दरियाँ निर्भय होकर स्नान किया करती थीं। उनके चरणों के नूपुरों की ध्वनि से यमुना का तट मुखरित रहा करता था। आज वही यमुना शुष्कप्राय होकर मन्द गति से बह रही है ! आज रेल के चक्कों से यमुना का शरीर क्षत-विक्षत हो रहा है। पितामह, इस यमुना के तट पर ही मेरी मथुरा पुरी है। जिस समय मैं बाल-स्वभाव से प्रेरित होकर कदम्ब के वृक्ष पर जा बैठता और वंशी बजाने लगता, यह पगली यमुना उमड़कर सुनने के लिए आ पहुँचती। आज उसी यमुना की यह दुरवस्था देखकर मेरा हृदय द्रवित होता जा रहा है। विधाता, यमुना चिरकाल तक राजराजेश्वरी के रूप में रहने के बाद आज

दासी बन गई है। चिरकाल तक स्वाधीन रहने के बाद आज पराधीन हो गई है। इससे बढ़कर दुःख का विषय और क्या हो सकता है ?

मध्याह्न में भोजन आदि से निवृत्त होकर देवगण ख़ुसरूबाग़ देखने गये। वरुण ने कहा--पितामह, यह वाटिका अकबर के पुत्र ख़ुसरू ने लगवाई है। वाटिका की जो इतनी ऊँची चहारदीवारी है, वह क़िला बनने के बाद बची हुई सामग्री से बनाई गई है। एक बहुत बड़े फाटक से होकर देवगण ने भीतर प्रवेश किया और ख़ूब चौड़ी पक्की सड़क से होकर चारों ओर घूम-घूमकर पेड़-पौधे देखने लगे। मनोरम वाटिका, पानी का कल तथा वाटिका के भीतर बने हुए मक़बरे आदि देखकर देवगण स्थान को लौटे आ रहे थे। रास्ते में एक बंगाली युवक को देखकर पितामह एकाएक उसका नाम-धाम पूछ बैठे।

बंगाली युवक ने कहा--महाराज, मेरा नाम है निशिकान्त सेन। जाति का मैं वैद्य हूँ। मैं यहाँ रेलवे के आफ़िस में क्लर्क हूँ।

युवक की इस बात से ब्रह्मा बहुत अप्रसन्न हुए। उन्होंने कहा--वैद्य-जाति में जन्म ग्रहण करके भी नौकरी करने के लिए तुम जन्म-भूमि से इतनी दूर प्रयाग दौड़े आये हो ? वहीं पड़े-पड़े गोली-चूरन बेंच-बेंचकर भी तो तुम पेट पाल सकते थे। देशवासियों की चिकित्सा के ही लिए तुम लोगों की सृष्टि हुई है, किन्तु अपने व्यवसाय का परित्याग करके अपने लिए नरक का रास्ता प्रशस्त करते जा रहे हो। विलायती पानी पी-पी कर जो इतने लोगों को नरकगामी होना पड़ रहा है, उसका फल तो तुम लोगों को भोगना ही पड़ेगा, साथ ही चिकित्सा के अभाव के कारण जो कितने आदमी अकाल में ही काल के गाल में चले जाते हैं, उसके लिए भी यम की अदालत में तुम्हें दण्ड स्वीकार करना पड़ेगा।

अन्त में हाईकोर्ट, प्रयाग-विश्वविद्यालय तथा आलफ़्रेड पार्क आदि देखकर देवगण प्रयाग से प्रस्थान करने का विचार करने लगे।

आलफ़्रेड पार्क में बने हुए थार्नहिल मेमोरियल, विशेषत: पब्लिक लाइब्रेरी की, प्रशंसा किये बिना वे न रह सके, यद्यपि लाइब्रेरी में अँगरेजी भाषा की पुस्तकों की तुलना में देवभाषा संस्कृत की पुस्तकें नहीं के बराबर ही मालूम पड़ीं। हाईकोर्ट से विश्वविद्यालय की ओर आते समय उन्होंने मेयोहाल भी देख लिया था।

देवगण ताँगे पर सवार होकर जब आलफ़्रेड पार्क से निकलने लगे, तब ताँगेवाले ने पूछा---बाबा जी, क्या मिंटोपार्क भी ले चलूँ? क़िले के समीप यमुना जी के तट पर बना हुआ होने के कारण यह पार्क बहुत ही मनोरम है। इस पार्क में एक स्तम्भ पर महारानी विक्टोरिया की घोषणा खुदी हुई है। परन्तु समयाभाव के कारण वे वहाँ न जाकर सीधे स्टेशन गये। यथा-समय टिकट लेकर देवगण मिर्ज़ापुर की गाड़ी पर सवार हुए। प्रयाग से चलते समय देवगण को इस बात का खेद रहा कि गमनागमन की सुविधाजनक व्यवस्था न होने के कारण वे शृङ्गबेरपुर, पाण्डेश्वर महादेव, दुर्वासा-आश्रम तथा सुजावन देवता और कौशाम्बी आदि महत्त्वपूर्ण स्थानों को न देख सके।

मिर्ज़ापुर

प्रयाग से चलकर देवगण मिर्ज़ापुर पहुँचे। स्टेशन पर उतरकर पत्थर के एक क़िले के पास से होते हुए वे लोग जाकर चौक पहुँचे और वहाँ अगणित दूकानें देखकर स्नान के निमित्त गङ्गा जी की ओर चले। गङ्गा जी के तट पर पहुँचकर उन्होंने देखा कि पत्थर के कई अच्छे-अच्छे घाट बने हुए हैं। जल में उस समय कई नौकायें तैर रही थीं। उन नौकाओं में से किसी-किसी पर बैठकर मुसलमान मल्लाह भात खा रहे थे। किसी-किसी नौका का कड़कड़ शब्द करके पाल खोला जा रहा था और किसी-किसी का आधा खुला हुआ पाल हवा के वेग से फटाफट कर रहा था। नारायण एक दृष्टि से

उन नौकाओं की ओर देखते रहे। अन्त में वरुण से उन्होंने विभिन्न आकार-प्रकार की नौकाओं का विवरण पूछा।

ब्रह्मा ने कहा—नारायण, तुम इस प्रकार एक दृष्टि से नौकाओं की ओर क्यों ताक रहे हो ? चलो, जल्दी से स्नान से निवृत्त हो लें।

इन्द्र—यहाँ काष्ठ इतनी अधिक मात्रा में क्यों रक्खा हुआ है ?

वरुण—काष्ठ की बिक्री का यह एक बहुत बड़ा केन्द्र है। यहाँ खरीदने पर दाम में भी किफ़ायत होती है।

इन्द्र—मुझे अपनी बैठक की छत बदलवानी है। इसलिए दस-बीस कड़ियों की आवश्यकता पड़ेगी। क्या यहाँ से ले जाने में कुछ सुविधा होगी ?

स्नान के निमित्त जल में प्रवेश करते समय वरुण ने कहा—मिर्ज़ापुर में चोरों का बड़ा उपद्रव है। इसलिए यह अधिक अच्छा होगा कि हम लोगों में से कोई आदमी सामान आदि देखता रहे, और लोग स्नान करें।

पितामह ने कहा—घाट पर आदमी तो कोई वैसा है नहीं, क्या एक बार डुबकियाँ लगाते भर में ही कोई सामान उठा ले जायगा ? इतना कहकर वे स्नान के निमित्त आगे बढ़े कि आँखें मूँदकर ध्यान लगाये हुए एक संन्यासी की ओर उनकी दृष्टि गई। अब उन्होंने सारी चीज़ें उस संन्यासी के पास रखने का वरुण आदि को आदेश करके कहा—महाराज, हमारी इन चीज़ों की ओर भी ज़रा दृष्टि रखिएगा। कुछ मुस्कराहट के साथ मस्तक हिलाकर संन्यासी ने अपनी सहमति प्रकट की। अब देवगण जल में प्रवेश करके निश्चिन्त भाव से अँगौछे से शरीर को मलने लगे। धूर्त संन्यासी को इससे बहुत ही अनुकूल अवसर मिल गया। एक बड़ी-सी गठरी लेकर वह चम्पत हुआ।

स्नान से निवृत्त होने पर देवगण ने देखा तो संन्यासी वहाँ नहीं था। सामान की ओर ध्यान जाने पर उन्हें मालूम हुआ कि नारायण

आगरा से जो दरी, ग़लीचा आदि ख़रीद ले आये थे, वह सब नहीं है। इससे वे दंग रह गये। क्रोध में आकर उन्होंने कहा--इस पाजी ने मेरे ही ऊपर हाथ साफ़ कर दिया ?

आश्चर्य में आकर ब्रह्मा ने कहा--वरुण, यह कैसी बात है? संन्यासी के वेश में भी चोर ! साधु के वेश में भी असाधु !! तब तो आदमी को पहचानना बड़ा कठिन है।

वरुण ने कहा--भाग्य से ही रुपयोंवाले बक्स में उसने हाथ नहीं लगाया, अन्यथा कलकत्ता जाने की बात हवा हो जाती।

यहाँ से देवगण भोगमाया के दर्शन के निमित्त चले। वहाँ पहुँचते ही कई एक संड-मुसंड पंडों ने आकर इन्हें घेर लिया। उन्हें देखते ही देवगण की आत्मा सूख गई। उन्होंने मन में यही स्थिर किया कि ये सब पूरे डाकू हैं।

वरुण ने कहा--पितामह, पीतल के खम्भों से घिरे हुए इस सङ्कीर्ण गृह में देवी की जो मूर्त्ति है, वह भोगमाया की है। देखिए, मन्दिर के चारों ओर देवी की और भी कितनी मूर्तियाँ हैं।

पंडे लोग पैसे के लिए बहुत परेशान कर रहे थे, इससे देवगण ने मन्दिर में नहीं प्रवेश किया। किराये की एक गाड़ी पर बैठकर वे लोग विन्ध्याचल में अधिष्ठित योगमाया के दर्शन के निमित्त चले।

विन्ध्याचल

प्रयाग से आते समय देवगण मिर्ज़ापुर न जाकर विन्ध्याचल में ही उतरना चाहते थे, परन्तु जिस गाड़ी से वे आये थे, वह वहाँ नहीं रुकती थी, इससे मिर्ज़ापुर में ही उतरने के लिए बाध्य होना पड़ा। अब मिर्ज़ापुर से चलने पर दूर से ही विन्ध्यपर्वत देखकर ब्रह्मा ने कहा—वरुण, यदि इस पर्वत पर योगमाया रहती हैं तब आगे न

बढ़कर यहीं से लौट चलना ठीक होगा। इतना जीर्ण शरीर लेकर देव-दर्शन के निमित्त पर्वत पर तो मुझसे चढ़ा न जायगा।

वरुण--जी नहीं, चढ़ने में किसी प्रकार का क्लेश न होगा। देवी जी के एक भक्त ने बहुत-सा रुपया खर्च करके एक सीढ़ी बनवा दी है।

क्रमशः गाड़ी आकर सीढ़ी के पास खड़ी हुई। देवगण एक-दूसरे का हाथ पकड़कर ऊपर चढ़ने लगे। अन्त में आकर वे मन्दिर के पास पहुँच गये। आस-पास बैठकर पण्डित लोग पाठ कर रहे थे।

ब्रह्मा ने कहा--इस मूर्त्ति की स्थापना किसने की है?

वरुण ने कहा--जिस समय श्रीकृष्ण ने देवकी के आठवें गर्भ से जन्म ग्रहण किया था, ठीक उसी समय महामाया भी यशोदा के गर्भ से उत्पन्न हुई थीं। श्रीकृष्ण के अवतार ग्रहण करते ही वसुदेव को यह आकाशवाणी सुनाई पड़ी कि तुम इस रात्रि के समय में ही अपने पुत्र को यशोदा के सूतिकागृह में रखकर उनकी कन्या उठा ले आओ। आकाशवाणी सुनते ही वसुदेव कारागार से निकल पड़े और उपर्युक्त प्रकार सन्तान-विनिमय करके लौट आये। कारागार में आते ही महामाया ने चिल्ला-चिल्लाकर रोना आरम्भ किया। रोने का शब्द सुनकर पहरेदारों ने कंस को सूचना दी कि देवकी को सन्तान हुई है। कंस ने आकर देखा कि इस बार देवकी को पुत्र न होकर कन्या हुई है। इससे वे सोचने लगे--देवर्षि नारद ने तो यह कहा था कि देवकी के आठवें गर्भ से जो पुत्र उत्पन्न होगा, वही मेरा अन्त करेगा। परन्तु इस बार तो पुत्र न होकर कन्या हुई है। निरर्थक इसका वध करने से क्या लाभ होगा? परन्तु क्षण भर में उसके मन में फिर यह बात आई कि शत्रु कैसा भी हो, वह उपेक्षा का पात्र नहीं है। उसका अन्त कर डालना ही उचित है। यह सोचकर कारागार में प्रवेश करके उसने उस तत्काल ही उत्पन्न हुई कन्या को उठा लिया और जोर से पत्थर पर पटककर मार

डालने का उद्योग किया। परन्तु हँसते-हँसते वे शून्य में अदृश्य हो गईं। जाते समय उन्होंने इस मूर्ति में विश्राम किया था।

योगमाया को भक्तिपूर्वक प्रणाम करके देवगण चारों ओर ताकने लगे। इन्द्र ने कहा--वरुण, योगमाया के दक्षिण ओर जो सुरंग दिखाई पड़ रही है, वह क्या है?

वरुण--पण्डों का कहना है कि योगमाया इसी सुरंग से होकर आविर्भूत हुई थीं।

देवगण को लेकर ब्रह्मा अब संहारमाया के दर्शन के निमित्त चले। महाकाली की यह मूर्ति यहाँ से लगभग आध कोस की दूरी पर है। लगभग डेढ़ सौ सीढ़ियाँ चढ़ने के बाद देवी की उस मूर्ति के पास देवगण पहुँचे। संहारमाया की भयंकर मूर्ति का दर्शन करते समय वे लोग अकस्मात् भय का अनुभव करने लगे। नारायण ने कहा--मुख-विवर तो इतना विशाल है कि मानो पर्वत का कोई छोटा गह्वर है।

वरुण--पितामह, आपको यह स्मरण होगा कि एक बार दैत्य लोगों ने जब दल-बल-सहित स्वर्ग, मर्त्य और पाताल पर पूर्णरूप से अधिकार करके घोर अत्याचार करना आरम्भ किया तब हम लोगों ने भगवती की शरण ली। हमारी स्तुति से प्रसन्न होकर भगवती ने हमें अभय दान किया और वे स्वयं मोहिनी-रूप में शुम्भ नामक दैत्य की वाटिका में आकर उपस्थित हुईं। शुम्भ की वह वाटिका इसी स्थान पर थी। धूम्रलोचन के मुख से उस रूप की प्रशंसा सुनकर दैत्यवंश पतिङ्गों की तरह दौड़ पड़ा और सौन्दर्यरूपी अग्नि में वह कूदने लगा। जो मूर्त्ति धारण करके भगवती ने शुम्भ का वध किया था; वह संहारमूर्त्ति यही है।

यह कथा श्रवण करने पर देवगण के शरीर में रोमाञ्च हो आया। देवी को बार-बार प्रणाम करके वे लोग स्तुति करने लगे। अन्त में वहाँ से प्रस्थान करते समय नाथ जी नामक एक साधु की

समाधि की ओर संकेत करके वरुण ने कहा--नाथ जी यहीं बैठकर तपस्या किया करते थे। यहाँ कोई दूसरा आदमी नहीं तपस्या कर सकता। जिस किसी ने प्रयत्न किया है, उसी के सामने भयंकर बाधा उपस्थित हुई है और वह इस योग्य नहीं रह गया कि तपस्या कर सके। अस्तु, उसके बाद उन लोगों ने विन्ध्याचल से प्रस्थान किया। मुग़लसराय से होते हुए वे लोग सिकरौल पहुँचे।

काशी

सिकरौल स्टेशन पर उतरने के बाद देवगण ने किराये की एक गाड़ी की और जगतगंज से होते हुए वे सीधे चौक पहुँचे। वहाँ गाड़ी से उतकर पतली-पतली गलियों में चक्कर काटते हुए वे मणिकर्णिका घाट पर पहुँचे। वृद्ध पितामह का हाथ पकड़े हुए नारायण उन्हें जल के समीप ले गये। चिल्लू में थोड़ा-सा गङ्गाजल लेकर पितामह ने मस्तक से लगाया और विह्वल-भाव से कहने लगे--आह! कृतार्थ हो गया। गङ्गे, आओ बेटी, इस कमण्डलु में आ जाओ। इतना कहकर पितामह रोने लगे। उस समय ममता ने उन्हें इतना अभिभूत कर रक्खा था कि उनके आँसू किसी प्रकार बन्द ही नहीं होते थे।

पितामह की यह अवस्था देखकर वरुण ने कहा--आप यह क्या कर रहे हैं? मृत्युलोक में आकर आप पागल तो नहीं हो गये हैं?

ब्रह्मा ने किसी प्रकार अपने को सँभालकर कहा--वरुण, सच-सच बतलाओ भैया, बेटी गङ्गा को इतना पुकारता हूँ मैं, परन्तु वह मुझे दिखाई नहीं पड़ती। उसका किसी प्रकार का अनिष्ट तो नहीं हुआ है?

वरुण--गङ्गा का भला क्या अनिष्ट होगा?

ब्रह्मा--अनिष्ट की बात मत पूछो भाई, मृत्युलोक में कितने तो पानी

के कल हैं, कितने बड़े-बड़े पुल हैं। आश्चर्य नहीं कोई उसे किसी कल के घर में बन्द किये हो या किसी पुल की कोठी में रोक रक्खा हो। भगीरथ ने भी यह कितना बड़ा अन्याय किया है कि बेचारी गङ्गा को देश भर में दौड़ाया है। एक स्थान पर रक्खे होते तब मैं खोज भी लेता उसे।

वरुण--आप चिन्ता न कीजिए, जहाँ कहीं भी सम्भव होगा, गङ्गा से मैं आपकी मुलाक़ात करा दूँगा।

विधाता की यह अवस्था देखकर स्नान के निमित्त आई हुई कुछ स्त्रियाँ एकत्र हो आईं। एक स्त्री ने कहा--शायद यह आदमी पागल है। दूसरी ने कहा--नहीं, पागल नहीं है। बुढ़ाई का शरीर है, निर्बलता के कारण दिमाग़ पर गर्मी चढ़ आई है। तीसरी ने कहा--जी नहीं, साफ़-साफ़ पागल है। दिमाग़ इसका ठिकाने पर होता तो इस तरह व्याकुल-भाव से गङ्गा-गङ्गा करके रो-रोकर मरता !

गङ्गापुत्र ने स्टेशन से ही देवगण का पल्ला पकड़ रक्खा था। उसने यह भी कह रक्खा था कि स्नान के समय यदि हम मन्त्र न पढ़ावेंगे तो स्नान का कुछ फल ही न प्राप्त होगा। परन्तु जब वे लोग गङ्गा जी में प्रवेश करके गले भर जल में खड़े हुए तब वह किसी प्रकार मन्त्र का उच्चारण ही नहीं करता था। केवल दक्षिणा की ही बात वह बार-बार मुँह से निकालता और कहता कि संकल्प कर लो कि हम लोग इतना-इतना देंगे। अन्त में बहुत ही झुँझलाहट के साथ नारायण ने कहा--देखो, हम लोग एक-एक अधेला देंगे। तुम्हारी इच्छा हो तो मन्त्र पढ़ो, नहीं तो मेरी बला से। इतना कहकर उन्होंने दन से डुबकी लगा ली। यह देखकर गङ्गापुत्र ने सोचा कि एक आदमी तो हाथ से निकल ही गया, कहीं और लोग भी इसी का अनुसरण न करें। इससे जो मिल रहा है, वही बहुत है। यह सोचकर वह मन्त्र पढ़ने लगा।

ब्रह्मा--एक समय विष्णु ने चक्र के द्वारा एक पुष्करिणी खोदी।

अन्नपूर्णा तेजी से दौड़ पड़ीं। उन्होंने कहा--आओ भाई, आओ। शायद जल-पान करने की भी तुम्हें याद नहीं रहती! देवर के पास बैठने तथा उनकी बातें सुनने में मुझे जितना आनन्द आता है, देवर उतने ही भागे-भागे फिरते हैं, एक मिनट भी जमकर घर में बैठते ही नहीं।

नारायण--काशी आया हूँ तो जरा घूम-फिर कर देखने की इच्छा तो होती ही है।

अन्नपूर्णा--देखने को मैं रोकती कब हूँ। परन्तु यहाँ की कोई चीज कहीं भगी तो जा नहीं रही है, जो एक ही दिन में कुल घूमकर देख लेना होगा?

नारायण--परन्तु उन लोगों को तो शान्ति नहीं है?

अन्नपूर्णा--उनकी और तुम्हारी अवस्था क्या समान है? अभी उस दिन तुम मरते-मरते बचे हो? शरीर में तुम्हारे क्या है, जरा बतलाओ तो? जरा आइने के सामने खड़े होकर देखो न कि कैसा हो गया है चेहरा तुम्हारा! शरीर की हड्डी-हड्डी गिनी जा सकती है। सर्दी के दिन हैं। यदि कहीं ठंडक लग गई तो फिर पड़ जाओगे। इसी लिए तो मैं बकते-बकते परेशान हूँ?

नारायण--आहा, यदि यही होता तो भी अच्छा था। भाभी, मुझे तुम कुछ ऐसा ही आशीर्वाद दो, जिससे कि इस संसार से मुझे शीघ्र ही छुटकारा मिल जाय, मेरी मृत्यु हो जाय।

अन्नपूर्णा--ओ मा! यह क्या बकते हो तुम? तुम्हें दुःख किस बात का है जो इस तरह की बात मन में आने देते हो?

नारायण--दुःख नहीं है? चौबीस घंटे के भीतर एक मिनट के लिए भी तो चिन्ता से शून्य नहीं हो पाता हृदय मेरा। कितने झमेले लगे रहते हैं मेरे पीछे भाभी! गालियाँ सुनते-सुनते मेरी तबीअत भर गई है।

अन्नपूर्णा--जिन्हें सोच-समझकर चलना नहीं आता, उनकी दशा

ऐसी ही होती है। मैंने भाई आज आरती तक नहीं देखी। तुम्हारी ही राह देखती बैठी रह गई।

देवर-भाभी इस तरह बातें कर ही रहे थे, इतने में एक दासी अलग-अलग दोनों में पूड़ी, कचौड़ी और मोहनभोग आदि लिये हुए आ पहुँची। वे सब चीजें अन्नपूर्णा के हाथ पर रखकर वह चली गई। तब एक तश्तरी में अपने हाथ से सजाकर अन्नपूर्णा ने वे चीजें नारायण के सामने रख दीं और वे एक-एक चीज उन्हें खिलाने लगीं।

नारायण--"बहुत-सा खा लिया, अब नहीं खाया जाता आदि कह-कहकर आपत्ति भी करते जा रहे थे और खाते भी जाते थे। यहाँ तक कि तश्तरी में उन्होंने एक चूर भी नहीं छूटने दिया। दासी फिर से आकर पानदान रख गई।

भोजन से निवृत्त होने पर पान का बीड़ा मुँह में भरे हुए नारायण ने पूछा--क्यों भाभी, भैया का यह मन्दिर क्या स्वयं विश्वकर्मा का बनाया हुआ है?

अन्नपूर्णा--जी नहीं, यह मन्दिर अहल्याबाई ने बनवा दिया था। सोने से मढ़वाया है इसे रणजीतसिंह ने। परन्तु जिन लोगों को यह बात मालूम नहीं है, वे ही यह कहा करते हैं कि यह साक्षात् विश्वकर्मा का बनाया हुआ है।

नारायण--अच्छा भाभी, तुमको यह तो मालूम ही है कि तुम्हारी सौत गङ्गा अपनी बाढ़ के कारण किसी न किसी ओर के किनारे को तोड़ती ही रहती हैं और उनके इस उपद्रव के कारण कितने मकान, कितनी अट्टालिकायें भग्न होकर उनके गर्भ में पूर्णरूप से या आंशिक रूप से विलीन होती रहती हैं। परन्तु तुम्हारी काशी में उनका कोई वैसा उपद्रव देखने में नहीं आता, अन्यथा इतने दिनों में तुम्हारी इस सोने की काशी का कम से कम आधा भाग तो उनके उदर में समा ही गया होता।

इस बात के उत्तर में अन्नपूर्णा ने कहा--गङ्गा अपने प्रवाह से काशी को नहीं तोड़ पाती। इसका एक कारण है।

गङ्गा जब यहाँ से जा रही थी, तब तुम्हारे भैया को देखकर आह्लाद से वह गद्गद हो गई और कल-कल शब्द से हँसती हुई आई। तुम्हारे भैया भी उसे देखते ही दौड़ पड़े। उन्होंने कहा--ख़बरदार, तुम इस ओर मत बढ़ना। तुम्हारे कारण मेरी सोने की काशी कटकर नष्ट हो जायगी। यह मुझसे सहा न जायगा। तब गङ्गा ने यह प्रतिज्ञा की कि एक बार तुम्हें देखकर ही मैं यहाँ से चलती बनूँगी। मेरे कारण काशी को किसी प्रकार की भी हानि न पहुँचने पावेगी। अच्छा नारायण, जाते समय मेरी देवरानियों के लिए यहाँ से थोड़ी-सी साड़ियाँ ख़रीदते जाना। उत्सव आदि के समय काशी की साड़ियाँ पहनकर वे बहुत ही प्रसन्न होंगी। बहुत ही उत्कृष्ट होती हैं यहाँ की साड़ियाँ।

नारायण--दो-एक से तो काम चलने का है नहीं। गड्ड की गड्ड ख़रीदकर ले जाऊँ, तब कहीं सबको एक-एक करके दी जा सकें। अच्छा भाभी, तुम बैठो, मैं ज़रा बाहर हो आऊँ।

बैठक में जाकर नारायण ने देखा तो सदाशिव तकिया की टेक लगाये हुए बैठे-बैठे बातें कर रहे थे। नारायण को देखते ही उन्होंने कहा कि तुम इस प्रकार सर्दी में क्यों घूम रहे हो? भीतर आकर बैठो। ज़रा ठीक से कान आदि ढक लो। निर्बल शरीर है, बहुत सावधानी के साथ रहना चाहिए। बाद को ब्रह्मा की ओर संकेत करके वे कहने लगे--देखो बड़े भैया, मेरी इस काशी में, सोने की काशी में, अब रह ही क्या गया है? जिस काशी में बैठकर कपिल ने सांख्य-दर्शन लिखा था, जिस काशी में बैठकर गौतम ने न्याय-दर्शन लिखा था, पाणिनि के व्याकरण के लिए जो काशी चिरकाल से प्रसिद्ध है, उसी काशी में आज ऐसे-ऐसे धुरन्धर विद्वान् पड़े हैं, जो किसी शास्त्र के एक भी ग्रन्थ का अधिकारपूर्वक अभ्यास नहीं कर पाये हैं, परन्तु भाव वे इस प्रकार का प्रदर्शित करते हैं, मानो ये साक्षात् बृहस्पति के भी गुरु हैं।

सदाशिव उस समय बहुत ही आवेश में थे। वे कहने लगे--देखो देवराज, यह वही काशी है, जहाँ महाराज हरिश्चन्द्र ने सर्वस्वदान के बाद आश्रय ग्रहण किया था। इसी काशी में तुलसीदास का आश्रम था; यहीं रामानन्द का मठ था। आज यह कितनी वेश्याओं तथा व्यभिचारियों का अड्डा बना हुआ है। बड़े यत्न से मैंने इस पुरी का निर्माण किया था। इसे अपने त्रिशूल पर स्थापित किया था इस विचार से कि भूकम्प का इस पर प्रभाव न पड़ सके। परन्तु काशी में पाप का भार इतना अधिक बढ़ गया है कि हमारे त्रिशूल के लिए भी इसे सँभाल रखना अब कठिन हो रहा है। कभी-कभी तो इतना क्रोध आता है कि काशी को नष्ट-भ्रष्ट करके रसातल में भेज दूँ और मैं फिर श्मशानवासी हो जाऊँ। देखो वरुण, क्या यह कम दुःख की बात है कि पापियों की संख्या बढ़ती देखकर कालभैरव ने प्रहरी के कार्य का परित्याग कर दिया है?

सदाशिव की इस प्रकार की दुःखमयी बातें सुनते-सुनते देवगण ने वह रात्रि व्यतीत कर दी। प्रातःकाल उठकर वे लोग फिर से नगर में भ्रमण करने के लिए निकले। कुछ दूर चलने के बाद वरुण ने कहा--पितामह, देखिए इधर दण्डपाणीश्वर महादेव विराजमान हैं।

ब्रह्मा--वरुण, इनकी उत्पत्ति किस प्रकार हुई?

वरुण--शिव की आराधना करने के कारण एक यक्ष को एक पुत्र हुआ था। बाल्यकाल से ही वह शिव का बहुत बड़ा भक्त हो गया। पढ़ने-लिखने की ओर ध्यान न देकर एकाग्र मन से वह शिव का ही ध्यान करता रहता। इससे क्रुद्ध होकर यक्ष ने अपने पुत्र को घर से निकाल दिया। तब वह बालक रोते-रोते काशी आया। यहाँ उसने इस लिङ्ग की स्थापना की और इसकी आराधना करने लगा। अन्त में शिव ने प्रत्यक्ष होकर उसे यह वर दिया कि आज से तुम्हारा नाम दण्डपाणि हुआ। मनुष्य की मृत्यु होने पर तुम उसे मेरे समक्ष ले आना, मैं उसका उद्धार करूँगा। तुम्हें मैं यह दण्ड दे रहा

हूँ, इसे तुम ग्रहण करो और अहङ्कारी आदमियों को इससे पीटकर भगाया करना, साथ ही ज्ञानियों को आदरपूर्वक काशी में रखना। जो कोई पहले तुम्हारी पूजा न करेगा उसकी पूजा मैं न ग्रहण करूँगा। तुम्हारे स्थापित किये हुए शिव का नाम आज से दण्डपाणीश्वर हुआ।

इन्द्र—परन्तु क्या हो गया उन दण्डपाणि का दण्ड? पापियों को वे भगा तो नहीं पाते हैं?

वरुण—कलि के प्रभाव के सामने आजकल क्या किसी की कुछ चल पाती है? जिस प्रकार अँगरेजी शासन के विरुद्ध राजा-महाराजा लोग चूँ तक करने का साहस नहीं करते, उसी प्रकार कलि के सामने सीधा होकर ताकने की शक्ति किसी देवता में नहीं रह गई है।

नारायण—बाप रे, जहाँ देखो वहीं शिव! काशी में और किसी देवता को खड़ा होने तक को ठाँव नहीं है।

वरुण—तुम्हारी यह बात ठीक नहीं है। वृन्दावन के सम्बन्ध में वह बात कही जा सकती है। परन्तु काशी के विषय में तुम ऐसा नहीं कह सकते हो। काशी में दुर्गा, गणेश, परेशनाथ आदि केशव आदि तैंतीस कोटि देवताओं की मूर्तियाँ हैं।

देवगण को लिये हुए वरुण सीधे आदिकेशव के मन्दिर के पास पहुँचे। वहाँ पहुँचकर उन्होंने नारायण से कहा—देखो, इस मन्दिर में तुम्हीं विराजमान हो।

इन्द्र—क्यों वरुण, नारायण यहाँ क्यों डटे हुए हैं?

वरुण—गणेश आदि देवता जब दिवोदास को काशी से खदेड़कर भगाने में असमर्थ हो गये तब शिव नारायण के पास गये। काशी के विरह से उस समय वे इतने व्याकुल थे कि नारायण को देखते ही वे रो पड़े। तब नारायण शिव को अभयदान करके लक्ष्मी को साथ में लिये हुए काशी आये। इस मन्दिर में आदिकेशव और कमलादेवी की मूर्ति स्थापित करके वे घर-घर के स्त्री-

पुरुषों में बौद्धमत का प्रचार करने लगे। बौद्धमत का प्रचार होने पर लोगों में नास्तिकता आगई और काशी के स्त्री-पुरुष सदाचार की मर्यादा का उल्लंघन करके व्यभिचार में लीन होने लगे। यह देखकर दिवोदास नारायण की स्तुति करने लगा। तब नारायण ने उसे दर्शन देकर कहा--शिव की काशी शिव के हवाले न करके तुमने बहुत बड़ा अधर्म किया है। उसी अधर्म का यह फल है जो काशी में आज इस प्रकार व्यभिचार की वृद्धि हो रही है। अब तुम्हारा इसी में कल्याण है कि शिव की एक मूर्त्ति यहाँ स्थापित करके काशी तुम शिव को लौटाल दो। अन्त में नारायण की आज्ञा के अनुसार भूपालेश्वर नामक शिव की स्थापना करके दिवोदास वहाँ से चला गया। आदिकेशव की वही मूर्त्ति आज भी इस मन्दिर में वर्त्तमान है।

अब वरुण देवगण को लेकर केदारनाथ के मन्दिर की ओर चले और उनकी उत्पत्ति का हाल बतलाते हुए उन्होंने कहा--एक ब्राह्मण को खिचड़ी बहुत ही प्रिय थी। यहाँ तक कि जिस दिन खिचड़ी न मिलती, उस दिन वह और कोई चीज खाता ही न था। वह ब्राह्मण था एक सिद्ध पुरुष। केदारनाथ के प्रति भी उसके हृदय में अपार भक्ति थी। प्रतिदिन खिचड़ी बनाकर वह हिमालय पर केदार-क्षेत्र जाता और केदारनाथ को अर्पण करने के बाद वह स्वयं भोजन करता। एक दिन उसका शरीर कुछ अस्वस्थ था। इससे उसने कुछ खाया नहीं। दिन बीतते-बीतते उसे भूख मालूम पड़ने लगी। तब उसने थोड़ी-सी दाल और थोड़ा-सा चावल बटलोई में चढ़ा दिया। अन्त में खिचड़ी बनकर तैयार हो जाने पर उसने उसे थाली में परोस दिया और रोते-रोते बोला--प्रभो केदारनाथ, यह बड़ा असमय है। अब यह सम्भव नहीं है कि इतनी दूर चलकर तुम्हें अर्पण कर सकूँ। परन्तु तुम्हें अर्पण किये बिना मैं इसे खाऊँ कैसे स्वामी?

ब्राह्मण आँखें मूँदे हुए रो रहा था। कुछ क्षण के बाद एकाएक

जब उसने आँख खोली तब यह देखकर विस्मित हो गया कि खिचड़ी जमकर पत्थर होती जा रही है। तब "हाय, यह क्या हुआ ?" कहकर उसने चिल्लाना आरम्भ किया। उस समय आकाशवाणी हुई कि मैं तुम्हारी खिचड़ी में आकर प्रकट हुआ हूँ, इससे यह जमकर पत्थर होती जा रही है। आज से तुम्हें केदार-क्षेत्र जाने की आवश्यकता न होगी। मैं इस पत्थर में ही निवास करता हूँ।

वहाँ से बाजार में विभिन्न प्रकार की उत्तमोत्तम वस्तुएँ देखते हुए देवगण ज्येष्ठेश्वर शिव और ज्येष्ठा गौरी की मूर्ति के समीप पहुँचे। उनका परिचय देते हुए वरुण ने कहा—दिवोदास को काशी से खदेड़ भगाने के बाद नारायण इसी स्थान पर खड़े-खड़े शिव की प्रतीक्षा कर रहे थे। अन्त में यहीं पर नारायण और शिव की एक-दूसरे से मुलाक़ात हुई थी। उस घटना की स्मृति के लिए नारायण ने स्वयं महादेव और भगवती की इन मूर्त्तियों की स्थापना की थी।

काशी की और भी चीजें देखने के लिए वरुण देवगण को ले जाना चाहते थे किन्तु ब्रह्मा कलकत्ता चलने के लिए जल्दी मचा रहे थे। उन्होंने कहा—चलो भाई, किसी प्रकार कलकत्ता ले चलो मुझे। वहाँ यदि गङ्गा से मुलाक़ात हो जाती तो मेरा सारा परिश्रम सार्थक हो जाता। जब से मैंने सुना है कि उस बेचारी को हावड़ा के पास खूब जकड़कर बाँध रक्खा है अँगरेजों ने, तबसे मैं अपने हृदय का आवेग किसी प्रकार भी नहीं रोक पाता हूँ।

वरुण ने कहा—अच्छी बात है, चलो अब सामान आदि लेकर सदाशिव के यहाँ से बिदा हो आवें और स्टेशन की ओर चलें। चलते-चलते वरुण ने कहा—देखो देवराज, यह वीरेश्वर का मन्दिर है। एक राजकुमार का जन्म मूल में हुआ था। ज्योतिषियों के परामर्श से राजा ने उसे दुर्गा जी के समीप फेंकवा दिया। देवी की डाकिनी-योगिनी आदि ने मिलकर राजकुमार का पालन किया। अन्त में राज-कुमार जब बड़ा हुआ और उसे ज्ञान का उद्रेक हुआ तब वह माता-

पिता की खोज में निकला। परन्तु कहीं भी उसे कुछ मालूम न हो सका। तब वह एकाग्र मन से शिव जी की आराधना करने लगा। राजकुमार की आन्तरिक भक्ति से प्रसन्न होकर शिव जी ने उसे वर दिया कि आज से तुम्हारा नाम वीर और तुम्हारे द्वारा स्थापित किये गये शिव का नाम वीरेश्वर हुआ। इन शिव की पूजा करके पुत्रहीन व्यक्ति पुत्र का मुख देखेगा।

स्थान पर पहुँचकर देवगण ने देखा तो सदाशिव नौकर से बाजार से ख़रीदकर लाई हुई चीज़ों का हिसाब ले रहे थे और पूछ रहे थे कि कल के जो दो पैसे बचे हुए थे उन्हें तुमने क्या किया? महादेव उसे ख़ूब डाँट-डाँटकर एक-एक बात पूछ रहे थे। यह देखकर देवराज ने वरुण के कान में कहा—सदाशिव अब हमारे वही भोलानाथ नहीं रह गये हैं। काशी की ज़मींदारी जब से उन्हें मिली है तब से वे बहुत ही चंट हो गये हैं।

वरुण—लोग ठगाकर ही सीखते हैं। इन्हें ठगने में किसी ने कुछ कसर तो रक्खी नहीं।

पहुँचते ही नारायण ने कहा—भैया, भोजन तैयार होने में अभी कितना विलम्ब है?

"अधिक विलम्ब नहीं है। तुम लोग तब तक स्नान आदि करके कुछ जलपान करो, तब तक भोजन भी तैयार हो जायगा।" यह कह-कर सदाशिव ने नौकर को तेल, साबुन तथा जल आदि ले आने का आदेश किया।

नारायण ने कहा—अब जलपान आदि का विलम्ब सह्य नहीं है भैया! भाभी जी से कहो कि जल्दी से जल्दी दो रोटियाँ बनाकर दे दें, खाकर हम लोग चलते बनें। हम लोग इसी गाड़ी से जाना चाहते हैं।

सदाशिव ने कहा—यह ख़ूब रही। आज भला तुम लोग कैसे जा सकोगे? अभी तुम लोग यहाँ का विश्वविद्यालय नहीं देख सके हो,

बाबू शिवप्रसाद गुप्त का बनवाया हुआ भारत-माता का मन्दिर नहीं देख सके हो, संस्कृत-कालेज तथा सरस्वती-भवन-पुस्तकालय नहीं देख सके हो। नागरी-प्रचारिणी-सभा तथा कलाभवन भी यहाँ की दर्शनीय वस्तुएँ हैं। इसके सिवा तुम लोग किसी दिन न तो जरा-सा विश्राम कर सके हो, और न किसी दिन ठिकाने से तुम्हारे भोजन की ही व्यवस्था की जा सकी है। अभी हम जाने न देंगे।

यह सुनकर ब्रह्मा ने कहा--नहीं भाई, अब यहाँ हम न रुक सकेंगे। किसी दिन कैलास में आवेंगे, वहीं तुम जो-जो इच्छा हो, खिला देना। घर से निकले काफ़ी दिन हो गये, अब जल्दी से जल्दी घूम-फिरकर लौटना चाहता हूँ।

सदाशिव ने कहा--अच्छा, तो इस समय भोजन करके आप विश्राम कीजिए, साँझ को चलकर मैं आप लोगों को गाड़ी पर बैठाल आऊँगा। यहाँ से कलकत्ता के लिए कई गाड़ियाँ जाती हैं। बाद को नौकर से उन्होंने कहा--देखो, दीवान जी से जाकर कहो--फ़ोन करके इन्क्वायरी-आफ़िस से ट्रेन का करेक्ट टाइम तो मालूम कर लें।

नारायण--आपके मुँह से अभी जितने शब्द निकले हैं, वे अधिकांश अँगरेजी के हैं। इसका अर्थ यह है कि आपने अब अँगरेजी भी पढ़ ली है।

सदाशिव--क्या करूँ भाई, हिन्दी भाषा आजकल अँगरेजी भाषा के शब्दों से इस प्रकार अपना कलेवर बढ़ाती जा रही है कि किसी-किसी वाक्य में तो क्रियाओं और विभक्तियों को छोड़कर हिन्दी का शायद एक भी शब्द नहीं आ पाता।

नारायण--परन्तु अँगरेजी तुम सीख कहाँ से पाये हो?

सदाशिव--मुझे क्या किसी के पास सीखने के लिए जाना पड़ा है भाई? सुन-सुनकर ही मैंने सीख लिया है। आजकल स्त्रियाँ तक तो अँगरेजी जानती हैं। मन्दिर में ही बैठे-बैठे देखता रहता हूँ, कितने उच्च शिक्षित युवक पादत्राण तक धारण किये हुए मन्दिर में चले

आते हैं और वैसी ही अँगरेजी से मिली हुई भाषा में आपस में बातें करते हैं। कोई कहता है--ओह, ट्रेन जर्नी में होल नाइट इतना ट्रबुल हुआ ! कोई कहता है--आज हम लोग यहाँ रेस्ट लेकर नेक्स्ट मार्निग की अप ट्रेन से जायँगे। कोई कहता है--अच्छा हुआ जो वाइफ़ को नहीं ले आया। वर्ना इतना ट्रबुल होता ऐसे रश में ! कोई कहता है--वाइफ़ को प्रेग्नेंट छोड़कर आया हूँ, पता नहीं सन हुआ या डाँटर।

तीन-चार बजे तक देवगण चलने की तैयारी करने लगे। सदाशिव ने उनमें से प्रत्येक के लिए एक-एक जोड़ा धोती और एक-एक डुपट्टा लाकर नारायण के सामने रख दिया। नारायण कहने लगे--"यह क्या ? इसकी कौन-सी आवश्यकता थी।" मुँह से तो वे यह बात कहते जा रहे थे किन्तु साथ ही साथ उन सबको लपेटकर वे बैग में बन्द भी करते जा रहे थे।

बैग में ताला लगाकर नारायण अन्नपूर्णा के पास पहुँचे। उन्हें प्रणाम करके उन्होंने कहा--तो अब आज्ञा दीजिए भाभी !

अन्नपूर्णा--यह क्या बात है भाई ! इस तरह आने की अपेक्षा तो न आना ही अच्छा था। यदि इतनी जल्दी चला जाना था तो फिर मोह बढ़ाने के लिए क्यों आये हो ?

नारायण--क्या करूँ भाभी, केवल बड़े भैया के कारण मुझे जाना पड़ रहा है, अन्यथा मेरी इच्छा थी यहाँ और कुछ दिन रहने की।

अन्नपूर्णा--तो फिर मुलाक़ात होगी न ?

नारायण--होगी क्यों नहीं ! कैलास में पहुँचकर दर्शन करूँगा। कुछ समय बाद मुझे कल्कि अवतार धारण करके मृत्युलोक में फिर आना पड़ेगा।

अन्नपूर्णा से बिदा होकर नारायण के बैठक में आते ही "ॐ बम् हर हर" करके देवगण वहाँ से चल पड़े। रास्ते में वरुण ने उन सबको

अगस्त्यकुण्ड, अगस्त्येश्वर महादेव तथा पिशाचमोचन तीर्थ आदि का दर्शन कराते हुए चले।

घाट पर जाकर देवगण ने किराये पर एक नौका की। उस पर बैठकर काशी की अपूर्व शोभा देखते हुए वे सब जाकर राजघाट पहुँचे। तब वरुण ने देवराज से कहा कि इस पुल से पार होकर व्यास काशी जाना होता है। शिव से अप्रसन्न होकर व्यास ने इस काशी का निर्माण किया था, परन्तु उनका उद्देश्य सिद्ध नहीं हुआ।

इन्द्र—व्यास ने किस उद्देश्य से इस काशी का निर्माण किया था और उनका उद्देश्य सिद्ध क्यों नहीं हो पाया?

वरुण ने कहा—शिव की काशी में आकर पापी लोग यदि बस जाते हैं और यहाँ आकर फिर पाप नहीं करते तब मृत्यु होने पर उनकी मुक्ति होती है। परन्तु काशी में आकर वे यदि पाप करते हैं, तब उनका किसी प्रकार भी उद्धार नहीं हो पाता। यह देखकर व्यास ने एक ऐसी काशी का निर्माण करने की प्रतिज्ञा की जहाँ आकर बस जाने पर भी यदि पापी लोग बराबर पाप करते रहें तो भी उनका उद्धार हो जायगा। व्यास की इस प्रकार की प्रतिज्ञा का हाल सुनकर अन्नपूर्णा ने सोचा—झमेला तो इन्होंने साधारण नहीं खड़ा किया। यदि इन्होंने वास्तव में एक ऐसी काशी का निर्माण कर दिया तब तो मेरी यह सोने की काशी उजड़ जायगी। अन्त में बहुत सोच-विचार करने के बाद वे वृद्धा का रूप धारण करके एक लकड़ी के सहारे धीरे-धीरे जाकर व्यास के सम्मुख उपस्थित हुईं और कहने लगीं—कहो बाबा, क्या कर रहे हो तुम? व्यास ने उत्तर दिया—बुढ़िया, मैं एक ऐसी काशी का निर्माण कर रहा हूँ जिसमें आकर प्राण-त्याग करने पर घोर से घोर पाप करनेवाला व्यक्ति तो मोक्ष का अधिकारी होगा ही, साथ ही यहाँ निवास करके कोई चाहे कैसा भी पाप करेगा, उसकी मुक्ति हो जायगी। अच्छा, अच्छा, कहकर अन्नपूर्णा कई पग आगे बढ़ गईं। परन्तु तुरन्त ही वे फिर लौट

पड़ीं और बोलीं—यहाँ मरने पर क्या होगा बाबा ? कान से मुझे जरा कम सुनाई पड़ता है, एक बार फिर बतला दो। अब व्यास ने चिल्लाकर कहा—यहाँ कोई भी पापी आकर निवास करे या यहाँ निवास करके कोई कैसा भी पाप करे, मृत्यु होने पर उसकी मुक्ति होगी। व्यास की यह बात समाप्त होते ही अन्नपूर्णा आगे बढ़ीं। परन्तु कुछ ही पग चलकर वे फिर पीछे की ओर लौट पड़ीं और पहले की ही तरह बोलीं—बाबा, मैं ठीक-ठीक नहीं समझ पाई हूँ। यहाँ मरने पर क्या होगा ? इस बार व्यास क्रोध में आगये। उन्होंने ऊँचे स्वर से कहा—गधा होगा। यहाँ मरने पर आदमी गधा होगा। तब भगवती ने मुसकराकर कहा—तथास्तु। उसके बाद वे अन्तर्हित हो गईं।

वरुण के मुख से यह कथा सुनकर नारायण ने कहा—तब तो भैया की अपेक्षा भाभी बहुत चतुर हैं। या यों कहिए कि वे ही इन्हें निभा रही हैं।

इन्द्र—यह तो कहावत ही है भाई कि स्वामी यदि सीधा-सादा होता है तो स्त्री चण्ट होती है। महेश्वरी ने महेश्वर को बहुत कुछ सिखा-पढ़ाकर होशियार कर लिया है। पहले का-सा भोलापन अब इनमें भी नहीं रह गया।

राजघाट से ही वरुण ने देवगण को रामनगर दिखलाया। उन्होंने कहा—काशी-नरेश रामनगर में ही रहा करते हैं। रामनगर की रामलीला विश्वविख्यात है।

ये बातें हो ही रही थीं, इतने में स्टेशन पर गाड़ी आने की घंटी सुनाई पड़ी। इससे वे लोग प्लेटफ़ार्म की ओर बढ़े। वरुण ने दौड़कर टिकट ख़रीद लिया। यथासमय गाड़ी आकर खड़ी हुई। एक डिब्बे में सबके बैठ जाने पर महादेव वहाँ से रवाना हुए।

बक्सर

काशी से होती हुई गाड़ी बक्सर पहुँची। उस स्थान का परिचय देते हुए वरुण ने कहा कि विश्वामित्र का यहीं पर तपोवन था। मिथिला के धनुर्यज्ञ में सम्मिलित होने के लिए जाने से पहले रामचन्द्र यहाँ आये थे। ताड़का नामक राक्षसी का वन भी यहाँ से बहुत समीप ही था। उसका वध करके श्री रामचन्द्र जी ने उसका शव जिस नाले में फेंका था, वह आज भी वर्त्तमान है और ताड़कानाला के नाम से ही विख्यात है। ताड़का-वध के बाद भागीरथी में स्नान करके श्री रामचन्द्र जी ने जिन शिव की पूजा की थी, वे भी वर्त्तमान हैं और रामेश्वर के नाम से प्रसिद्ध हैं। लोगों का विश्वास है कि जो स्त्री भक्तिपूर्वक इन शिव को स्नान कराती है, उसे सीता, सती के समान पति प्राप्त होता है। बक्सर का क़िला भी बहुत ही प्रसिद्ध है। यहाँ कई युद्ध हुए हैं। विशेषतः बक्सर के द्वितीय युद्ध के बाद जो सन्धि हुई है, भारतीय इतिहास पर उसका बहुत ही महत्त्वपूर्ण प्रभाव पड़ा है।

दस-बारह मिनट के विराम के बाद गाड़ी फिर चल पड़ी। बक्सर के बाद कई स्टेशन जाने के बाद एकाएक गाड़ी एक ऐसे स्थान पर रुकी जहाँ कोई स्टेशन नहीं था। सुनने में आया कि इंजन ख़राब हो गया है। अब दूसरा इंजन जब तक न आ जायगा, तब तक यहीं रुका रहना पड़ेगा। यह सुनकर वरुण के आग्रह से ब्रह्मा आदि गाड़ी पर से उतर पड़े और समीप ही वर्त्तमान सोन-नद का पुल देखने के लिए चले। देवगण को देखते ही रक्त से सारे शरीर को आर्द्र किये हुए, कलकल-निनाद से रोते-रोते सोन आ पहुँचा और देवगण के चरणों के समीप धड़ाम से लोट पड़ा। नारायण के पूछने पर अपनी गाथा उसने इस प्रकार सुनाई—

प्रभो, इस पापिष्ठ का नाम है सोन। इस भाग्यहीन का जन्म चिरकाल से दुःख के अगाध सागर में ग़ोते खानेवाले विन्ध्य के नेत्रों के

जल से हुआ है। पिता जी को उनके गुरुदेव अगस्त्य सदा के लिए भूमिष्ठ करके इसलिए दक्षिण दिशा की ओर चले गये हैं कि उन्होंने एक बार मस्तक उठाकर समस्त देवों तथा ऋषि-मुनियों को भयभीत कर दिया था। इस अहङ्कार के ही कारण उनकी यह दुर्दशा हुई है। किन्तु देव, मैंने तो कभी मस्तक उठाकर अहङ्कार का भाव प्रदर्शित किया नहीं, तृष्णा से व्याकुल व्यक्ति को जल-दान करने में कभी कृपणता की नहीं, तब किस अपराध से मेरी यह दुर्दशा हो रही है? आपके चिर शत्रु जरासन्ध ने मेरे तट पर राजधानी बनाई थी, क्या इसी कारण मेरी यह दशा की गई है? क्या एकमात्र इसी अपराध के कारण छत्तीसों जाति के लोग ट्रेन पर सवार होकर मेरी छाती पर से होकर आते-जाते रहते हैं? आठों पहर रेलगाड़ी के चक्कों से मेरा शरीर क्षत-विक्षत होता रहता है! हे प्रभो, आपने स्वेच्छा से वलि का बन्धन स्वीकार किया था। किन्तु अनिच्छा होने पर भी मैं इस प्रकार अँगरेजों के बन्धन में क्यों पड़ा हूँ? विधाता ने भारत के भाग्य में सदा के लिए यदि दासता का बन्धन लिख दिया है तो वह भोगता रहे पराधीनता का दुःख, परन्तु क्या इसी कारण हम भारत के नद-नदी और नाले तक स्वाधीनता के सुख से वञ्चित रहेंगे? विधाता ने हमें विशेष-रूप से इसलिए झमेले में डाल दिया है कि उन्होंने मुझमें कुछ तो भर दिये हैं देव-भाव और कुछ भर दिये हैं मनुष्य-भाव। यदि मैं पूर्णरूप से देव-भाव का अधिकारी हुआ होता तो इन सब कष्टों का मुझ पर कोई प्रभाव ही न पड़ता। इसके विपरीत यदि मुझमें पूर्णरूप से मनुष्य-भाव भरे होते तो अब तक काल के गाल में जाकर इन दुःखों से छुटकारा पा गया होता। विधाता के श्री चरणों में इस भाग्यहीन सोन ने ऐसा कौन-सा अपराध किया है, जिसके कारण उसकी यह दुर्दशा हो रही है।

सोन की ये दुःखमय बातें सुनकर उसे आश्वासन देते हुए वरुण ने कहा——सोन, विधाता को तुम व्यर्थ में दोषी मत ठहराओ। देखो, वे स्वयं एक साधारण व्यक्ति के समान तुम्हारे तट पर खड़े हैं। स्वर्ग

के अधीश्वर देवराज दीनवेश में यहाँ खड़े हैं। तुम्हारा अधीश्वर स्वयं मैं हूँ। नारायण को तुम पहचान ही रहे हो। भारत में कहाँ हमारी वह प्रभुता थी कि एक पल में क्या से क्या कर सकते थे, कहाँ आज हम पासिंजर ट्रेन के थर्ड क्लास में धक्के खाते फिर रहे हैं। अभी हम इतने दरिद्र भी नहीं हो गये हैं कि फ़र्स्ट क्लास का टिकट न ख़रीद सकें, परन्तु आशङ्का तो इस बात की है कि कहीं फ़र्स्ट क्लास में बैठने का प्रयत्न करने पर अँगरेज़ लोग ठोकर न मार दें।

वरुण की यह बात समाप्त ही हो रही थी कि वायु के वेग से दौड़ता हुआ इंजन आकर गाड़ी में लग गया और अन्य यात्रियों के समान ही देवगण भी उतावली के साथ अपने डिब्बे में जाकर बैठ गये। सीटी देकर गाड़ी रवाना हो गई। अब थोड़ी देर के बाद देवगण पटना जंक्शन पर पहुँच गये। तब वरुण ने कहा——पितामह, पटना का मुख्य स्टेशन यही है। लोग इस स्थान को बाँकीपुर कहा करते हैं। यह एक दर्शनीय स्थान है। इससे यहाँ अवश्य उतरना चाहिए।

देवगण जिस समय पटना स्टेशन पर उतरे, उसी समय गया के लिए गाड़ी तैयार थी और प्लेटफ़ार्म पर घूम-घूमकर गयावाल के गुमाश्ते यात्री संग्रह करने के लिए असाध्य साधना कर रहे थे। एकाएक एक गुमाश्ता ब्रह्मा से भी पूछ बैठा——गया चलोगे बाबा? इस बात का सुनना था कि ब्रह्मा विह्वल हो उठे। उन्होंने कहा वरुण, चलो पहले गया हो आवें, तब यह नगर देखें। गया से उत्तम कोई और तीर्थ नहीं है। अन्य तीर्थों में जाकर मनुष्य स्वयं अपना उद्धार करता है किन्तु जो व्यक्ति गया जाता है उसके छप्पन कोटि पितरों का उद्धार हो जाता है। अस्तु, पितामह के आदेश से सब लोग जाकर गया की गाड़ी में बैठ गये।

गया

देवगण साँझ को गया स्टेशन पर उतरे। वरुण ने कहा--चैत्र-मास में मधुगया और भाद्रपद के अन्त में सिंहगया करने के लिए यहाँ बहुत अधिक यात्री आया करते हैं। यह कहकर वे सबको लिये हुए फल्गु नदी के तट पर पहुँचे। वहाँ उन्होंने किसी गयावाल का एक कमरा किराये पर लिया और हविष्य आदि ग्रहण करने के बाद लेटे। लेटे ही लेटे वे लोग बातचीत करने लगे।

इन्द्र ने कहा--वरुण, गया की उत्पत्ति का कारण क्या है ?

वरुण ने कहा--त्रिपुरासुर के पुत्र गयासुर ने एक बार तपस्या करके ब्रह्मा को प्रसन्न कर लिया और उनके वर से वह अमर हो गया। बाद को जब उसके पिता की मृत्यु हुई तब उसका बदला लेने के लिए संहारकर्त्ता शङ्कर पर उसने आक्रमण किया। युद्ध में शङ्कर गयासुर से परास्त हो गये। तब उन्होंने कौशल से उसे युद्ध करने के लिए नारायण के पास भेजा। नारायण भी दो बार उससे परास्त हुए और उन्होंने उसे वर देने की इच्छा प्रकट की। नारायण की इस बात के उत्तर में गयासुर ने कहा--मैं तुम्हें भी वर दूँगा। इस अवसर से लाभ उठाने के विचार से नीति-कुशल नारायण ने वचनबद्ध करके उससे यह वर माँगा कि तुम पृथिवी का परित्याग करके पाताल में प्रवेश करो और आज से वहीं निवास करते रहो। गयासुर प्रतिज्ञा से भ्रष्ट तो हो नहीं सकता था, इससे उसे पाताल में प्रवेश करना ही पड़ा। परन्तु नारायण को भी वह फाँसे बिना नहीं रह सका। उसने उनसे यह वर माँगा कि मेरे पाताल में प्रवेश करने पर तुम मेरे मस्तक पर चरण रक्खे खड़े रहो और जो कोई तुम्हारे इस श्री पाद-पद्म पर पिण्डदान करेंगे, उनके पितृ-गण मुक्त होकर वैकुण्ठ में आश्रय प्राप्त करेंगे। जिस दिन मैं देखूँगा कि एक भी आदमी तुम्हारे पाद-पद्म पर पिण्डदान करने नहीं आया, उसी दिन पाताल भेदकर पृथिवी पर आ जाऊँगा और तुमसे युद्ध

करूँगा। इस गया-क्षेत्र में गयासुर का मस्तक है, जहाज़पुर में नाभि है और श्री क्षेत्र में चरण हैं। इसलिए इन सब स्थानों पर लोग पिण्डदान किया करते हैं।

इन्द्र ने कहा--अच्छा वरुण, यदि गया-क्षेत्र भर में गयासुर का मस्तक है तब गदाधर के मन्दिर में ही लोग क्यों पिण्डदान किया करते हैं? इतने विस्तृत क्षेत्र में किसी भी स्थान पर तो पिण्डदान किया जा सकता है?

वरुण--पिण्डदान के निमित्त गदाधर के मन्दिर में गये बिना पण्डों के जाल में पाँव कैसे पड़ सकते हैं?

ब्रह्मा--देखो इन्द्र, हमारे मनुष्य जैसे बात-बात में पाप करते रहते हैं, वैसे ही उनके उद्धार के लिए बहुत ही सरल उपाय भी निर्दिष्ट कर दिये गये हैं।

वरुण--उपाय तो है अवश्य, परन्तु उनका अवलम्बन करके उद्धार करने जाता कौन है? आजकल ऐसे-ऐसे कुलाङ्गार वंशधर हो रहे हैं जो इन सब बातों को मिथ्या कहकर उड़ा देते हैं। केवल कुछ विधवा स्त्रियों के द्वारा समय-समय पर उपकार होता रहता है।

वरुण यह बात कह ही रहे थे कि समीप के ही एक मकान से स्त्री के कण्ठ से निकली हुई सङ्गीत की ध्वनि देवगण के कानों में प्रविष्ट हुई। यह सुनकर पितामह ने कहा--क्या यहाँ भी है?

"कौन?"

"दुराचारिणी स्त्री।"

वरुण ने कहा--दुराचारिणी स्त्री की आशङ्का से आप सिमट गये! परन्तु आपको मालूम होना चाहिए कि इस युग में पृथिवी पर सर्वत्र ही दुराचारिणी स्त्रियाँ देखने में आती हैं। यह विचार लेकर कि वेश्या के पास से होकर जाना पाप है, और जिस नगर में वेश्या निवास करती है, उसमें निवास करना पाप है, मृत्यु-लोक में आना ही उचित नहीं है।

ब्रह्मा--तब मैं स्वर्ग में जाकर चान्द्रायण करूँगा।

वरुण--यही अच्छा है।

दूसरे दिन सवेरा होते ही उठकर देवगण स्नान के निमित्त फल्गु नदी की ओर चले। घाट पर उतरते ही उन लोगों ने देखा कि यहाँ पर नाइयों का एक काफ़ी अच्छा जमघट लगा हुआ है। वहाँ पके हुए नारियल, तुलसी, तिल और जव के सत्तू आदि की क़तार की क़तार दूकानें थीं। अगणित शूकर फल्गु के तट पर घूम रहे थे। यह सब देखकर इन्द्र ने कहा--क्यों वरुण? फल्गु नदी अन्तःसलिला क्यों है?

वरुण ने कहा--वनवास के समय श्री रामचन्द्र गया आये थे। नदी के उस पार सीताकुण्ड नामक जो स्थान है, वहाँ सीता जी को बैठाल कर वे स्वयं लक्ष्मण के साथ फल लेने के लिए चले गये थे। उन दोनों भाइयों की अनुपस्थिति में राजा दशरथ ने आकर सीता जी को पिण्डदान करने का आदेश किया। घर में किसी प्रकार की सामग्री तो थी नहीं, वे पिण्ड देतीं तो किस चीज़ का देतीं। इससे वे बहुत चिन्तित थीं। परन्तु मृत राजा ने कहा कि तुम बालू का पिण्ड दे दो, उसी से मुझे तृप्ति हो जायगी। अन्त में श्वशुर की आज्ञा से पिण्ड बनाने के लिए सीता जी ने जिस स्थान से बालू निकाली थी, वह सीताकुण्ड के नाम से प्रसिद्ध हुआ। कुण्ड में राम-लक्ष्मण और सीता की मूर्त्तियाँ आज भी वर्त्तमान हैं। अस्तु, राम-लक्ष्मण के लौटकर आने पर सीता जी ने उक्त घटना का हाल बतलाया। परन्तु उन्हें इस बात का विश्वास नहीं हुआ, इससे उन्होंने फल्गु नदी की गवाही ली। गवाही में फल्गु ने बिलकुल झूठी बात कही इससे वह अंतःसलिला हो गई है।*

---

* कहा जाता है कि सीता जी ने वट-वृक्ष, फल्गु नदी, ब्राह्मण और तुलसी-वृक्ष को साक्षी माना था। परन्तु वट-वृक्ष के अतिरिक्त सभी झूठ बोल गये थे। इससे सीता जी के शाप से ब्राह्मण कलि में

अब देवगण फल्गु में स्नान करके श्राद्ध-तर्पण करने लगे। बालू खोदकर नारायण ने निम्नलिखित मन्त्र का उच्चारण किया और उन्होंने गङ्गा जी में डुबकी लगाई।

फल्गुतीरे विष्णुजले करोमि स्नानमादृतः।
पितृणां विष्णुलोकाय भुक्ति-मुक्ति-प्रसिद्धये॥

स्नान से निवृत्त होकर देवगण तट पर आये और गीली ही धोती पहने हुए उन्होंने पितरों के निमित्त श्राद्ध-तर्पण किया। उसके बाद गया-वाल को एक-एक रुपया और एक-एक नारियल भेंट करके पत्थर से बँधे हुए घाट से होते हुए गदाधर के स्थान पर पहुँचे। उस स्थान का दृश्य बहुत ही करुण था। गया आने पर माता को स्मरण हो आया कि पुत्र को पिण्डदान करना है, इससे वह शोकाकुल होकर चीख़ने और विलाप करने लगी। कहीं किसी स्त्री को पिण्डदान करते समय स्वामी का स्मरण हो आया, इससे वह मूर्च्छित होकर वहीं भूमि पर गिर पड़ी। इस प्रकार के इतने दृश्य वहाँ थे, मानो गदाधर के स्थान पर शोक का फ़व्वारा छूट रहा था।

दुःखित होकर देवगण ने विष्णु-मन्दिर में प्रवेश किया और गदाधर के पद-चिह्न को चारों ओर से घेरकर तीर्थ-पुरोहित के आदेश के अनुसार पिण्डदान करने लगे। पुरोहित ने कहा––अब आप लोग अपनी इच्छा के अनुसार किसी को भी पिण्डदान कर सकते हैं। तब नारायण निम्नलिखित आशय के वाक्य पढ़-पढ़कर पिण्डदान करने लगे––

"मेरे कुल में जितने ग्वाल, वैष्णव अथवा राजपूत या ब्राह्मण, मत्स्य, बराह या कूर्म आदि ऐसे महापुरुष हुए हों, मृत्यु के बाद जिनकी गति नहीं हुई, उन सबके निमित्त मैं पिण्डदान कर रहा हूँ। मेरे भिन्न-

---

अपमानित जीवन व्यतीत कर रहे हैं, तुलसी के वृक्ष पर कुत्ते पेशाब करते फिरते हैं और फल्गु नदी अन्तःसलिला हो गई। इसके विपरीत वट-वृक्ष उसी प्रकार पूजा प्राप्त कर रहा है।

भिन्न अवतारों के मित्रों के वंश में, मेरे वंश में, मातामह के वश में, पड़ोसियों अथवा ग्रामवासियों के वंश में जितने ऐसे जीव हुए हैं, जिन्होंने माता के गर्भ में ही प्राण-त्याग कर दिया है, उन सबके सिवा मैं उक्त कुलों के उन सब जीवों के निमित्त पिण्ड अर्पण करता हूँ, जिनकी मृत्यु सर्प काटने, चोर-डाकुओं के प्रहार करने, जल में डूब जाने या घर गिरने पर मलवे के नीचे दब जाने के कारण हुई है। जिन्हें व्याघ्र आदि हिंसक जन्तुओं अथवा सींग से मारनेवाले पशुओं ने मार डाला है, जो वृक्ष से गिरकर मरे हैं, अथवा कुत्ता या सियार काट लेने, अफ़ीम या कोई और प्रकार का विष खा लेने के कारण जिनकी मृत्यु हुई है, उन सबके निमित्त मैं पिण्डदान कर रहा हूँ। इनके सिवा मैं उन लोगों के निमित्त पिण्डदान कर रहा हूँ जिन्होंने गले में छुरी मारकर या फाँसी लगाकर आत्महत्या की है, अथवा जिन्होंने अकाल में बुभुक्षा से पीड़ित होकर या युद्ध में जाकर प्राण-त्याग किया है। मेरे वंश की यदि किसी स्त्री ने एकादशी व्रत के अवसर पर क्षुधा और पिपासा से पीड़ित होकर, प्रसववेदना के कारण अथवा स्वामी का वियोग सहन करने में असमर्थ होकर चिता पर बैठकर प्राण-त्याग किया हो, उसके निमित्त मैं पिण्डदान कर रहा हूँ। मेरे वंश के यदि कोई नरक में हों, पशुयोनि को प्राप्त हों अथवा भूत-प्रेत होकर पृथ्वी पर भ्रमण कर रहे हों, उन सबके निमित्त मैं पिण्डदान कर रहा हूँ। मेरे श्वशुर, गुरु या पुरोहित पास-पड़ोस के लोगों या नौकर-नौकरानियों के कुल का यदि कोई आदमी नरक में हो तो उसे मैं पिण्डदान कर रहा हूँ। स्वयं मेरे, मेरे गाँव के या मेरे सम्पर्क में रहनेवाले अन्य सब व्यक्तियों के सम्बन्धियों के कुल में से यदि कोई नरक में हो तो उसके निमित्त मैं पिण्डदान कर रहा हूँ। मेरे जिन भाई-बहनों ने सूतिकागार में कंस के प्रहार से प्राण-त्याग किया है, उन सबके निमित्त मैं पिण्डदान कर रहा हूँ। उनके अतिरिक्त वृन्दावन के मैदान में चरनेवाली अपनी समस्त गौओं, लङ्का के युद्ध में राक्षसों से लड़कर प्राण-त्याग करनेवाले वानरों तथा कुरुक्षेत्र के

भयङ्कर युद्ध-क्षेत्र में काम आनेवाले वीरों के निमित्त मैं पिण्डदान कर रहा हूँ।

मेरे भिन्न-भिन्न अवतारों की माताओ, मुझे गर्भ में धारण करने के कारण तुम्हें बहुत क्लेश सहन करने पड़े हैं। दस मास तक स्वास्थ्य-वर्द्धक खाद्य सामग्रियों का परित्याग करके केवल जली हुई मिट्टी खाती रही हो तुम लोग। सूतिकागार में प्रसववेदना के कारण कितना क्लेश सहन किया है तुम लोगों ने। प्रसव के बाद तीन दिन तक निराहार रहकर तीव्र अग्नि से शरीर को सुखाने के बाद कटु द्रव्यों का पान और भोजन किया है तुम लोगों ने। अस्तु इसी प्रकार के और भी उनके कितने क्लेशों का उल्लेख करने के बाद नारायण ने कहा--तुम्हारे गुण असीम हैं, तुम्हारे स्नेह का अन्त नहीं है। पुत्र होकर तुम्हारे ऋण से छुटकारा प्राप्त करने का कोई उपाय नहीं है। आज मैं गया-धाम में आकर तुम लोगों के निमित्त पिण्डदान कर रहा हूँ। भाग्यहीन पुत्र के द्वारा दिया गया पिण्ड ग्रहण करो।

माताओं के निमित्त पिण्डदान करने के बाद नारायण ने प्रणयिनियों के निमित्त पिण्डदान किया। उसके बाद वे हाथ धोने जा रहे थे, इतने में वरुण ने कहा--और कुछ पिण्ड तुम्हें निरर्थक खर्च करने पड़ेंगे।

नारायण--किनके निमित्त ?

वरुण--सनातनधर्म की अवहेलना करके नास्तिक मतों का अनुसरण करनेवाले तथा धर्मान्तर ग्रहण करनेवाले हिन्दुओं के निमित्त। ये सब हिन्दुओं के ही बालक हैं। ये हम लोगों को मानें या न मानें, किन्तु तुम्हें उन पर दया करनी ही चाहिए, क्योंकि तुम हिन्दुओं के देवता हो। इन लोगों की अवस्था पर मुझे इतनी करुणा आती है!

यह बात सुनकर नारायण ने बची-बचाई खीर लेकर उसे नौ कसोरों में भर दिया। पहले-पहल तीन कसोरों को ऊपर-नीचे सजाकर निराकारवादियों को संबोधित करते हुए उन्होंने कहा--हे

निराकारवादियो, तुम लोग ईश्वर को चाहे निराकार समझो या नीराकार समझो, तुम्हारी गति के लिए मैं खीर के तीन कसोरे उत्सर्ग करता हूँ। ये भूत, वर्त्तमान और भविष्य, इन तीनों ही कालों में तुम्हारी तृप्ति का साधन करेंगे। सब लोग बाँट-चोंटकर भ्रातृ-भाव से खाना। देखना, पिण्ड के विभाग में भी दलबन्दी, मारपीट और लड़ाई-झगड़ा न हो। हे हिन्दू-धर्म का परित्याग करके ईसाई-धर्म ग्रहण करनेवाले महानुभावो, मैं तीन कसोरे खीर तुम्हारे निमित्त भी उत्सर्ग कर रहा हूँ। इसके बल पर उजाले का मुँह देखकर प्रेत-योनि या जिस किसी भी योनि में भ्रमण करते होओगे, उससे मुक्त हो जाओगे। हे विलायत से लौटकर आये हुए साहब रूपधारी हिन्दुओ, तुम्हें यह ख़ूब मालूम है कि अँगरेजों के स्वर्ग में तुम्हारे लिए स्थान नहीं है। काली जाति अर्थात् हिन्दुओं का इतना आदर है कि अँगरेजों के नरक में भी तुम्हें स्थान मिलेगा या नहीं, इसमें सन्देह है। तुम्हारी सद्गति के निमित्त भी मैं तीन कसोरे पिण्ड रख छोड़ता हूँ। तुम चाहे होटल में मरो या अस्पताल में मरो, इन पिण्डों की बदौलत तुम्हें हिन्दुओं का स्वर्ग मिल जायगा। इतना कहकर नारायण ने हाथ धोया और निम्न-लिखित मन्त्र का उच्चारण किया—

एष पिण्डो मया दत्तस्तव हस्ते जनार्दन।
गयाशीर्षे त्वया देयो मह्यं पिण्डो मृते मयि॥

ब्रह्मा ने कहा—वरुण, इस मन्दिर का निर्माण किसने करवाया है?

वरुण—इन्दौर की महारानी अहल्याबाई ने इस मन्दिर का निर्माण करवाया है। इस मन्दिर के निर्माण में बहुत ही उत्कृष्ट श्रेणी के पत्थर लगाये गये हैं। विष्णुमन्दिर के उस ओर जो मन्दिर दिखाई पड़ रहा है, उसमें अहल्याबाई की ही संगमरमर की बनी हुई एक मूर्त्ति स्थापित है। इस सती-साध्वी महिलारत्न की भी लोग देवी के ही रूप में पूजा किया करते हैं। इस स्थान को ही लोग बुद्धगया कहा

करते हैं। बौद्ध-धर्म के प्रवर्त्तक गौतम बुद्ध ने इसी स्थान पर तपस्या करके सिद्धि प्राप्त की थी।

इन्द्र——क्या विष्णुमन्दिर में और भी कोई मूर्त्ति स्थापित है?

वरुण——नहीं, केवल पत्थर पर अङ्कित किया हुआ विष्णु का चिह्न भर वहाँ है। लोग उसी पद-चिह्न के ऊपर पिण्डदान किया करते हैं। मन्दिर के उस ओर गदाधर की मूर्त्ति है।

इसके बाद देवगण राम-शिला, ब्रह्मयोनि आदि कई छोटे-छोटे पहाड़ों पर पिण्डदान करने के बाद प्रेत-शिला की ओर चले। रास्ते में उन्हें एक वेश्या भी दो लम्पटों के साथ प्रेत-शिला की ओर जाती हुई दिखाई पड़ी। दोनों लम्पटों में से एक के ऊपर मदिरा का अधिक प्रभाव था। लड़खड़ा-लड़खड़ाकर चलते-चलते वेश्या को संबोधित करके उसने कहा——बाँय गुलाब, (वेश्या का नाम) तू मुझे कितना चाहती है? मैं तो तुझे इतना चाहता हूँ जितना कि फल्गु के तट के सूकर लोग विष्ठा को चाहते हैं। यह सुनकर वेश्या ने कहा——ऐ घृणित व्यक्तियो, ठहरो! तुम्हारे ही उपद्रव के कारण तो मैं प्रेत-शिला जा रही हूँ।

इन्द्र——वरुण, यह क्या है? इस स्त्री को वह पुरुष बाँय कह रहा है और स्त्री उसे घृणित व्यक्ति कह रही है।

वरुण——शराबी लोग जिस किसी को भी बाँय कह देते हैं।

नारायण——मा ने क्या अपराध किया है जो बार-बार बाँय की ही याद आती है इन्हें!

वरुण——ऐसे लड़के को उदर में धारण कर रखना क्या साधारण अपराध है?

देवगण क्रमशः प्रेत-शिला के समीप जाकर उपस्थित हुए। वरुण ने कहा——यहाँ पिण्डदान करने पर पूर्वज लोग प्रेतयोनि से मुक्त हो जाते हैं।

उस समय कई बंगालिनें भी वहाँ आ पहुँचीं। उनमें से एक ने कहा--दीदी, मेरे ससुर के ममेरे भाई के जो फुफेरे ससुर थे, उनके भांजे का क्या नाम था, क्या तुम्हें याद है? उन बेचारों को बड़े लड़के ने जूते से मार दिया था, इससे अफ़ीम खाकर उन्होंने आत्महत्या कर ली थी। सुनने में आता है कि मरने के बाद वे प्रेत हुए हैं और बड़ा उपद्रव कर रहे हैं। लड़के भी उनके एक-से एक बढ़कर हैं। कोई उपाय नहीं करना चाहते वे लोग उनके उद्धार के लिए। इसी से सोचती थी कि एक पिण्ड देकर उनकी भी गति कर देती, किन्तु नाम ही नहीं मालूम है।

एक दूसरी स्त्री ने कहा--ओ मा, याद आने पर शरीर थर्रा उठता है। इतना भयङ्कर स्वप्न देखा है रात्रि में! मानो मेरी मँझली ननद आई हैं। वे सौभाग्य के सभी प्रकार के चिह्न धारण किये हैं और मुझसे बहुत विनीतभाव से कह रही हैं--भाँभी, आईं हों तों मेंराँ भी उँद्धाँर किंयें जाँनाँ। मेंरें नाँम सें एँक पिण्ड देंनाँ नँ भूँलनाँ। जाँनतीं तों हों, सोंहँड़ में मँरकँर मैं चुँड़ैंल हुँईं हूँ। तुँम्हारें बाँग में रँहतीं हूँ।

आँखें पोंछती हुई एक दूसरी स्त्री रुद्ध कण्ठ से बोली--दीदी, मैंने कल स्वप्न में देखा है, मालिक मानो आकर मेरे सिरहाने बैठे हैं और मुझसे कह रहे हैं--अपनी सालाना बिदाई लेने के लिए जब मैं शान्तिपुर जा रहा था, तब रास्ते में डाकुओं ने मारकर मेरा सारा सामान छीन लिया था। कैसे अशुभ मुहूर्त्त में मैं शान्तिपुर के लिए तुमसे बिदा हुआ था कि फिर हमारी-तुम्हारी मुलाक़ात नहीं हुई। मृत्यु के बाद मैं वहीं सेमर के एक वृक्ष पर भूत होकर रहता हूँ। यदि दैवयोग से गया आगई हो तो मेरा उद्धार करने को न भूलना। मुझे एक पिण्ड देना जरूर। इतना कहकर वह स्त्री रोने लगी। बाद को किसी प्रकार अपने को सँभालकर उसने कहा--व्यर्थ ही मैं गया आई हूँ दीदी! कितना कहा उन्होंने, परन्तु मैं कुछ कर नहीं सकती।

पास में पैसे तो हैं नहीं ! मुझे क्या करना है बहन ! यदि किसी प्रकार एक पिण्ड उन्हें देने पाती तो वे जाकर सुखपूर्वक स्वर्ग में निवास करते, मेरे भाग्य में जो लिखा है, वह मैं भोगती रहती। दूसरों के यहाँ रोटियाँ ठोंकते-ठोंकते किसी प्रकार जीवन व्यतीत ही कर दूँगी।

ये सब बातें सुनकर देवगण बहुत ही दुःखी हुए। वे वहाँ और न ठहरकर सीधे स्थान पर गये। बाद को गया में तीन दिन तक वास करने के पश्चात् सब लोग सुफल लेने के लिए अक्षयवट की ओर चले। वहाँ पहुँचकर उन लोगों ने देखा तो सुफल की कामना से बैठे हुए लोगों की अपार भीड़ थी। गयावालों में कोई पालकी पर बैठे थे, कोई तम्बू में बैठे थे और कोई-कोई सजे-सजाये कमरे में विराजमान थे। गया श्राद्ध करने के निमित्त गई हुई दल की दल स्त्रियाँ हाथ जोड़े हुए विनीतभाव से खड़ी थीं। किसी के हाथ में पाँच चवन्नियाँ थीं, किसी के हाथ में नव चवन्नियाँ थीं और कोई-कोई तीन ही चवन्नियों के बल पर सुफल लेने का प्रयत्न कर रही थीं। गयावालों ने फ़रमान निकाला कि पाँच रुपये से कम में सुफल न मिलेगा। अन्त में उन्होंने अपने-अपने कर्मचारियों को आदेश किया कि हर एक यात्री के हाथ फूल की एक माला से बाँध दो। यात्रियों में से दर कम करवाने के लिए किसी-किसी ने अपनी अवस्था का विस्तारपूर्वक वर्णन किया। किसी-किसी ने पण्डा जी के पैर पकड़कर रो तक दिया, परन्तु चोर को भला कहीं धर्मशास्त्र की कथा अच्छी लगती है ? इच्छानुसार रुपये प्राप्त किये बिना वे भला कब सन्तुष्ट होनेवाले थे ?

वरुण ने कहा---देखिए पितामह, इसी वट-वृक्ष की छाया में बैठकर महर्षि गौतम ने साठ हज़ार वर्ष तक शिव की आराधना की थी।

गयावालों की हृदयहीनता देवराज से न देखी गई। उन्होंने कहा--क्यों वरुण, ये निर्दय जन्तु कौन हैं, जिनके चरण पकड़े हुए स्त्रियाँ रो रही हैं; किन्तु उनका हृदय ज़रा भी नहीं आर्द्र होता ?

वरुण--वे ही लोग गयावाल हैं।

इन्द्र--गयावालों की उत्पत्ति कैसे हुई ?

वरुण--एक बार पितामह ब्रह्मा गया धाम में पिण्डदान करने के निमित्त आये थे। पार्वण श्राद्ध के निमित्त उन्होंने उस समय सात ब्राह्मणों की सृष्टि की थी। अन्त में जब वे लौटने लगे तब उन सबने हाथ जोड़कर कहा--विधाता, तुमने हमारी सृष्टि तो कर दी परन्तु हमारी जीविका का कोई विधान नहीं किया। यह सुनकर प्रजापति ने कहा--आज से तुम लोग इस गया-तीर्थ के ब्राह्मण हुए। जो यात्री फूल-चन्दन से तुम्हारे पाद-पद्म की पूजा नहीं करेगा और तुम्हें सन्तुष्ट करने में सफल नहीं हो सकेगा, उसकी गया-यात्रा सफल न होगी। बाद को ही वे सातों ब्राह्मण गयावाल के नाम से प्रसिद्ध हुए। ये सब कुलाङ्गार उन्हीं गयावालों के वंशधर हैं।

वरुण की यह बात समाप्त भी न हो पाई थी कि एक अल्पवयस्का विधवा आई और गयावाल महाशय के चरणों की पूजा करने के बाद उसने चौदह आने पैसे उनके हाथ पर रक्खे और सुफल देने की प्रार्थना की। परन्तु बड़ी रुखाई के साथ उसे उत्तर मिला कि चौदह रुपयों से कम में तुम्हारे माता-पिता को स्वर्ग नहीं भेजा जा सकता। वह बेचारी कितना रोई, चरण पकड़कर कितनी अनुनय-विनय की, परन्तु कुछ लाभ नहीं हुआ।

गयावाल की इस प्रकार की हृदयहीनता के कारण ब्रह्मा झुँझला उठे। उन्होंने कहा--वरुण, यह बेचारी बालिका रोती क्यों है ? सुफल लिये बिना ही क्यों नहीं चली जाती ?

वरुण--जी नहीं, इन लोगों को इस बात का दृढ़ विश्वास है कि गयावाल के सुफल बोले बिना गया आना ही निरर्थक हो जायगा, माता-पिता को स्वर्ग नहीं भेजा जा सकेगा। यह सुनकर नारायण ने कहा--पितामह ने भी अद्भुत जीवों की सृष्टि कर दी है! मुझे

तो आशङ्का हो रही है कि कहीं इस बार के श्राद्ध के कुश जाग न उठें और उपद्रव मचाना आरम्भ कर दें।

इधर देवगण बातें कर रहे थे, उधर बालिका बेचारी गयावाल महोदय का चरण पकड़े रो रही थी। अन्त में अन्य यात्रियों, विशेषतः उस बालिका के ग्राम में निवास करनेवाले यात्रियों ने बहुत अनुनय-विनय की और उसकी अवस्था का हाल विस्तारपूर्वक बतलाया, तब बड़ी रियायत के साथ उसे पाँच रुपयों में सुफल मिला।

ज़रा ही देर के बाद उक्त शराबियों के साथ गुलाबबाई भी आकर उपस्थित हुईं। गुलाबबाई ने पण्डा जी के चरणों की पूजा की। बस, फूल की एक माला से तुरन्त ही उनके हाथ बाँध दिये गये। बाई जी के शरीर पर सोने के अलङ्कारों की अधिकता देखकर पण्डा जी ने कहा--पाँच सौ रुपये लाओ, तब सुफल मिलेगा तुम्हें।

"इतने रुपये कहाँ पाऊँ महाराज," यह कहकर गुलाब पण्डा जी का पैर पकड़कर रोने लगी। वेश्या को रोती देखकर लम्पट लोग बहुत ही दुःखी हुए। उनमें से एक तो फफक-फफककर रो पड़ा। दूसरा कहने लगा--बाँय गुलाब, पैर तुम छोड़ दो मेरी रानी, पैर छोड़ दो। तुमने किस युग में किसका पैर पकड़ा है। दूसरे ही लोग तुम्हारा पैर पकड़ा करते हैं।

शराबियों ने परस्पर परामर्श किया कि आओ गुलाब को हटाकर हम लोग पण्डा जी के पैर पकड़ें और उनसे सुफल वसूल कर लें। यह अधिक अच्छा होगा, क्योंकि हमें पैर पकड़ने का अभ्यास है। इस निश्चय को कार्य-रूप देने में विलम्ब नहीं हुआ। बाई जी को ज़रा-सा दूर हटाकर दोनों शराबियों ने पण्डा जी के दोनों पैरों को ख़ूब ज़ोर से पकड़ा और उनकी पौलियों पर बार-बार माथा पटकने लगे। उन दोनों की बस यही एक धुन थी--सुफल दो महाराज! ऐसा सुफल दो कि हम लोग ख़ूब खावें-पीवें और मौज उड़ावें। जल्द ही सुफल दो महाराज!

शराबियों के मुँह से मदिरा की इतनी तीव्र गन्ध निकल रही थी कि उसके कारण पण्डा जी का अन्नप्राशन तक का अन्न निकल आना चाहता था। दुर्भाग्यवश उनके शरीर में इतना अधिक बल भी नहीं था कि दो-दो आदमियों को ठेलकर वे भाग सकें। नाक में कपड़ा ठूँसते-ठूँसते उन्होंने वेश्या से कहा--माई जी, तुम अपने इन गणों को बुला लो, बाद को स्वेच्छा से जो कुछ दे दोगी वही लेकर मैं संतोष कर लूँगा और तुम्हें सुफल दे दूँगा।

पण्डा जी के मुँह से यह बात सुनते ही वेश्या प्रसन्न हो गई। हँसती हुई जाकर उसने दो रुपये पण्डा जी के हवाले किये और प्रसन्न-भाव से सुफल प्राप्त करके शराबियों से बोली--मुझे सुफल मिल गया है, अब तुम लोग पण्डा जी को परेशान मत करो। परन्तु शराबी लोग इस तरह माननेवाले तो थे नहीं। उन्होंने कहा--कहाँ मिला सुफल तुम्हें? तुम्हारे हाथ में तो कुछ दिखाई नहीं पड़ रहा है। झूठी बात है यह।

शराबी लोग पण्डा जी की पौली पर बराबर माथा पटकते ही रहे, यहाँ तक कि एक ने उनके चरण-कमल पर ही वमन भी कर दिया। उन दोनों से अपने आपको छुड़ाकर भागना तो पण्डा जी के लिए सम्भव था नहीं, इससे छुटकारा प्राप्त करने के लिए उन्हें विवश होकर पुलिस की शरण लेनी पड़ी।

देवगण अभी तक ध्यानपूर्वक यही दृश्य देख रहे थे। किन्तु ब्रह्मा किस समय एकाएक वहाँ से चलते बने, इस बात का उनके साथियों को पता तक न चल सका। अन्त में उन्होंने जब देखा कि पितामह साथ में नहीं हैं, तब तेजी से पैर बढ़ाते हुए सब लोग आगे की ओर चले। एक वृद्ध को पकड़ने में विलम्ब ही कितना लग सकता था! जरा ही दूर बढ़ने पर उनसे मुलाक़ात हो गई। इन सबको देखते ही ब्रह्मा ने कहा--भाई, यहाँ तो वेश्या का दान ग्रहण करके सुफल दिया जाता है, इससे एक क्षण भी अब यहाँ रहना उचित नहीं

है। स्थान पर आकर देवगण ने तुरन्त ही सामान उठाया और स्टेशन की ओर रवाना हुए। रास्ते में उन सबने एक-एक पथरी ख़रीदी।

स्टेशन पर पहुँचकर वरुण ने कहा—देवराज, गया जिस प्रकार हिन्दुओं का सर्वश्रेष्ठ तीर्थ है, उसी प्रकार बौद्धों की दृष्टि में भी एक बहुत ही महत्त्व का स्थान है। एक मन्दिर में महात्मा बुद्ध की एक बहुत ही विशाल मूर्ति भी है। इसके सिवा एक पर्वत में एक बहुत बड़ी खोह है, जिसके सम्बन्ध में लोगों की धारणा है कि श्राद्ध करते समय भीमसेन अपनी बाईं जंघा मोड़कर बैठे थे, उसी से यह खोह हो गई है। परन्तु पितामह की उतावली के कारण ये दोनों ही स्थान हम लोग न देख सके।

पटना

पटना नगर का भ्रमण करने के बाद देवगण यदि गया जाते तो वहाँ से वे सीधे कलकत्ता जा सकते थे, लौटकर फिर उन्हें पटना आने की आवश्यकता न पड़ती और इससे उन्हें ख़र्च में किफ़ायत भी पड़ती। परन्तु ब्रह्मा की उतावली के कारण वे लोग ऐसा न कर सके। इधर पटना-जैसे महत्त्वपूर्ण नगर को देखे बिना भी वे लोग नहीं जा सकते थे। इसलिए गया से सीधे कलकत्ता न जाकर वे लोग फिर लौटकर पटना आगये। वहाँ पहुँचने पर वरुण ने कहा कि पितामह, दानापुर, बाँकीपुर और पटना ये तीनों ही स्थान इस प्रकार मिले हुए हैं कि मानो ये एक ही नगर के भिन्न-भिन्न अङ्ग हैं। यह विशाल नगर लम्बाई में लगभग सोलह मील होगा, किन्तु चौड़ाई इसकी पूरी-पूरी एक मील होगी या नहीं, इसमें सन्देह है। इस नगर का प्राचीन नाम पाटलिपुत्र है और पुराणों में इसका काफ़ी अधिक उल्लेख है। महावीर भीमसेन ने यहीं जरासन्ध के प्राणों का संहार किया था। नन्द, चन्द्रगुप्त और अशोक-

जैसे प्रतापशाली राजाओं की यहीं पर राजधानी थी और नीति-कुशल चाणक्य ने यहीं पर अपनी असाधारण राजनीतिज्ञता तथा परिमित अध्यवसाय का परिचय दिया था।

आवश्यकतानुसार जलपान तथा विश्राम आदि करने के बाद देवगण नगर में भ्रमण करने के लिए निकले। परन्तु जैसे-जैसे दिन अधिक बीत रहे थे, वैसे ही वैसे ब्रह्मा की व्यग्रता भी बढ़ती जा रही थी। घर लौटने के लिए वे बहुत ही अधीर थे। इसलिए उन्होंने आरम्भ में ही कह दिया कि भाई, केवल मुख्य-मुख्य स्थानों को देखकर ही यहाँ से रवाना हो जाना चाहिए, क्योंकि अब विलम्ब सह्य नहीं है।

वरुण पटना के कितने ही स्थानों को देखते हुए वहाँ की प्रायः सबसे ऊँची इमारत गोलघर के पास पहुँचे। उन्होंने कहा कि इस गोलघर का एक दूसरा नाम है 'गार्टिन्स फाली' अर्थात् गार्टिन्स साहब की मूर्खता। बिहार प्रदेश में एक बार बहुत बड़ा अकाल पड़ा था। इससे गार्टिन्स साहब ने सन् १८८४ ई० में बहुत-से रुपये खर्च करके यह इतनी बड़ी इमारत इसलिए बनवाई थी कि इसमें बहुत-सा अन्न सुरक्षित रक्खा जा सकेगा। परन्तु यह बिलकुल खाली पड़ा रहता है, किसी काम में नहीं आता। उँचाई इसकी एक सौ दस फ़ुट है। इस पर चढ़कर बहुत-से लोग नगर की शोभा देखा करते हैं।

देवगण पटना-विश्वविद्यालय के भिन्न-भिन्न विभागों को देखने के बाद वहाँ के आयुर्वेदिक स्कूल में पहुँचे। देवगण विशेषतः ब्रह्मा को इस बात से बहुत ही संतोष हुआ कि बिहार की राजधानी पटना में सरकार की ओर से अँगरेजी चिकित्सा-विज्ञान के साथ ही आयुर्वेद की शिक्षा की भी व्यवस्था है। ब्रह्मा ने कहा—अँगरेजी चिकित्सा-पद्धति का इतना अधिक आदर होने के ही कारण हमारी सृष्टि के कितने मनुष्य अकाल में ही काल के गाल में जा रहे हैं। इसलिए इस

प्रकार की व्यवस्था यदि प्रत्येक प्रान्त में हो जाती तो आयुर्वेद-शास्त्र विस्मृति के गर्भ में जाने से बच जाता।

पटना देवी के मन्दिर के पास पहुँचकर वरुण ने कहा कि इन्हीं के नाम के आधार पर इस नगर का नाम पटना हुआ है। काली की मूर्ति इसमें स्थापित है। बेतिया के महाराज ने इस मन्दिर का निर्माण करवाया है। उसके बाद वे लोग महाराज रणजीतसिंह के बनवाये हुए हरमन्दिर के पास पहुँचे। वरुण ने बतलाया कि इस मन्दिर में गुरु गोविन्दसिंह की पादुका और उनका ग्रन्थ है। देवगण ने पटना में जितने अधिक इमामबाड़े देखे, उतने उन्हें और कहीं नहीं देखने में आये।

वैद्यनाथ धाम

पटना में गाड़ी पर सवार होने के बाद ब्रह्मा ने यह इच्छा प्रकट की कि भाई, अब सीधे कलकत्ता चलो, और कहीं रुकना ठीक नहीं है। परन्तु मुकामा, कुइल तथा झाझा आदि बड़े-बड़े जंक्शनों को पार करने के बाद ट्रेन आकर जब जसीडीह में पहुँची, तब वरुण ने आग्रह किया कि वैद्यनाथ धाम में हम लोगों को अवश्य चलना चाहिए। शिव का यह बहुत ही महत्त्वपूर्ण स्थान है।

वरुण की इस बात का समर्थन देवराज तथा नारायण ने भी किया। यह सुनकर पितामह ने कहा—अच्छी बात है। जहाँ हम लोगों ने इतने दिन बिता दिये, वहाँ एक दिन और सही। अन्त में जसीडीह में वे लोग उतर गये। वहाँ ब्राञ्च लाइन की गाड़ी पर बैठकर लोग कुछ ही मिनटों में वैद्यनाथ धाम जा पहुँचे।

ब्रह्मा के पूछने पर वरुण ने कहा—रावण जब स्वर्णपुरी लङ्का के निर्माण से निवृत्त हुआ तब वह इस चिन्ता में पड़ा कि इस पुरी की द्वार-रक्षा का भार किस पर छोड़कर मैं शान्तिपूर्वक निवास कर सकता

हूँ। बहुत सोच-विचार करने के बाद वह इस परिणाम पर पहुँचा कि महादेव को ही लाकर द्वार-रक्षक के रूप में लङ्का में स्थापित करना चाहिए। एक तो वे सब देवताओं में श्रेष्ठ हैं, दूसरे सीधे भी वे इतने हैं कि आसानी से डेली में लाये जा सकते हैं। यह सोचकर उसने तपस्या के द्वारा शिव को प्रसन्न करने तथा उनसे वर प्राप्त करने का निश्चय किया। परन्तु बाद को उसके मन में आया कि तपस्या करने की क्या आवश्यकता है? मैं कैलास पर्वत को ही उखाड़कर क्यों न उठा लाऊँ और लङ्का में रख दूँ? मन में यह निश्चय करके लङ्केश्वर कैलास-पर्वत के समीप पहुँच गया और वह उसे खींच-खींचकर उखाड़ने का प्रयत्न करने लगा। परन्तु उसका वह प्रयत्न सफल नहीं हो सका। अन्त में तपस्या के द्वारा शिव को प्रसन्न करके उसने वर प्राप्त कर लिया। शिव ने कहा—तुम मुझे उठाकर लङ्का ले चल सकते हो, परन्तु रास्ते में यदि कहीं रक्खोगे तब फिर मैं उठ न सकूँगा। यह शर्त स्वीकार करके रावण जब शिव को लेकर चला तब मैंने उसके पेट में प्रवेश करके उसे लघु-शङ्का से पीड़ित कर दिया। इधर वृद्ध ब्राह्मण के रूप में नारायण भी यहाँ आ पहुँचे। रावण की प्रार्थना से ब्राह्मणरूपधारी नारायण ने शिव को अपने हाथों में ले लिया और जब वह लघुशङ्का करने लगा तब उन्होंने उन्हें यहीं स्थापित कर दिया। वे ही शिव वैद्यनाथ के नाम से प्रसिद्ध हैं।

वैद्यनाथ जी का मन्दिर स्टेशन से अधिक दूर नहीं है। इसलिए बातें करते-करते वे जरा ही देर में पहुँच गये। पण्डों का दल उन्हें जसीडीह से ही परेशान कर रहा था। उनसे किसी प्रकार पिण्ड छुड़ाकर वे पहले शिव-गङ्गा के तट पर पहुँचे और स्नान तथा सन्ध्या-तर्पण आदि किया। बाद को वे मन्दिर में गये। वैद्यनाथ को स्नान कराने के लिए गङ्गाजल ले आने का स्मरण देवगण को था नहीं, इससे मन्दिर के प्राङ्गण के कूप से जल खींचकर उन्होंने पूजन किया।

वरुण ने कहा--जिस कूप से जल भरकर हम लोगों ने शिव जी को स्नान कराया है, उसके सम्बन्ध में कहा जाता है कि रावण ने उसे बाण से खोदा था और भिन्न-भिन्न तीर्थ-स्थानों के जल से उसे पूर्ण किया था। इसी प्रकार शिव-गङ्गा तालाब के सम्बन्ध में भी कहा जाता है कि लघुशङ्का से निवृत्त होने पर पवित्र होने के लिए चरण के आघात से उसने यह तालाब खोदा था। पहले यह एक कुण्ड के रूप में था, किन्तु उसे सुधारकर अब स्नान के लिए पक्के घाट बनवा दिये गये हैं। यहाँ स्त्रियों के लिए पृथक् घाट हैं।

दर्शन-पूजन से निवृत्त होने पर देवगण ने वहाँ का गोवर्द्धन-साहित्य-विद्यालय, बालानन्द-संस्कृत-कालेज तथा रामकृष्ण-विद्यापीठ देखा। बाद को वहाँ से रवाना हो गये।

तारकेश्वर

वैद्यनाथ धाम से चलकर देवगण जब गाड़ी के एक डिब्बे में आकर बैठे तब पितामह ने कहा--यह बड़ा ही अच्छा हुआ कि हम लोगों ने श्री वैद्यनाथ जी के दर्शन कर लिये। वैद्यनाथ धाम केवल शिव का ही स्थान नहीं है, बल्कि शक्ति का भी स्थान है। सती के शव को विष्णु ने जब चक्र से बावन खण्डों में विभक्त किया था तब उनका हृदय वैद्यनाथ धाम में ही गिरा था, इसलिए यह हृदय-पीठ कहलाता है। खेद है कि केवल एक दिन का समय बचाने के लिए इतने महत्त्व का तीर्थ हम लोग छोड़े जा रहे थे। अच्छा भाई, चलो तारकेश्वर भी हो लें, जब मृत्युलोक में आये हैं, तब तीर्थ-दर्शन के फल से क्यों वञ्चित रहा जाय?

देवगण जिस दिन तारकेश्वर पहुँचे, उस दिन कोई पर्व था। इससे भीड़ के मारे कहीं खड़ा होने तक को आसानी से स्थान नहीं

मिल रहा था। खाद्य सामग्रियों तथा अन्यान्य वस्तुओं की दूकानें भी काफ़ी अधिक संख्या में थीं। यात्रियों में से किसी की गोद में बच्चा टें टें करके चिल्ला रहा था, किसी-का जेब कट गया तो किसी के अञ्चल के छोर से किसी ने पैसे खोल लिये। पूड़ी-मिठाई की दूकानों के पास दल के दल आदमी दोने में खाद्य सामग्री लिये हुए जल-पान कर रहे थे। स्त्रियाँ कहीं चूड़ी पहन रही थीं, कहीं शृंगार की चीज़ें या बच्चों के लिए खिलौने ख़रीद रही थीं। भिखारी लोग खँजड़ी की ताल पर गा-गाकर भिक्षा माँग रहे थे।

एक उपयुक्त स्थान ग्रहण करने के बाद पितामह ने कहा—वरुण, तारकेश्वर का वृत्तान्त बतलाओ।

पितामह की आज्ञा से वरुण ने कहा—तारकेश्वर पहले वन में एक साधारण पत्थर के रूप में पड़े रहते थे। मुकुन्द घोष नामक एक व्यक्ति की गौ प्रतिदिन आकर उन पर अपने स्तनों से दूध की धारा चढ़ा जाया करती थी। बाद को घर में जाने पर गौ दूध नहीं दे पाती थी। इससे मुकुन्द बहुत चिन्तित होता। बहुत कुछ अनुसन्धान करने के बाद जब एक दिन उसने वास्तविक घटना देख ली तब प्रत्यक्ष होकर तारकेश्वर ने उसे आदेश किया कि तुम संन्यासी होकर मेरा पूजन करो। मुकुन्द ने यथाशीघ्र उनकी आज्ञा का पालन किया। बाद को स्वप्न में महाराज वर्द्धमान को दर्शन देकर तारकेश्वर ने मन्दिर बनवाने का आदेश किया। इस प्रकार मन्दिर भी बन गया और मन्दिर के नाम काफ़ी सम्पत्ति भी लग गई।

दूसरे दिन सबेरा होते ही एक ब्राह्मण ने आकर पूछा कि आप लोग कितने मूल्य की डाली बाबा को लगावेंगे? ब्रह्मा ने कहा—दो आनेकी।

यह सुनकर ब्राह्मण ने कहा कि दो आना दस पैसा में डाली नहीं लगती। इसके लिए कम से कम आठ आने खर्च करने होंगे। ब्रह्मा ने कहा—अच्छी बात है, आठ ही आने दूँगा। तब उसने कहा—महन्त जी की गद्दी के पास चलिए, पूजा के पैसे वहीं नक़द देने होंगे।

ब्राह्मण के साथ जाकर देवगण ने देखा तो महन्त जी अपने कचहरी-घर में एक ऊँची गद्दी पर विराजमान थे। समीप ही उनके दीवान तथा अन्य कर्मचारी बैठे हुए थे। यात्रियों में से पूजा के निमित्त कोई रुपया, कोई अधेली, कोई सोने का टुकड़ा, कोई चाँदी का टुकड़ा दीवान के हाथ पर रख देता और चलता बनता। उसी समय पहुँचकर ब्रह्मा ने भी कहा--मेरे भी चार पैसे जमा कर लीजिए।

दीवान जी ठहाका मारकर हँस पड़े। महन्त जी महाराज की ओर सङ्केत करके उन्होंने कहा--महाराज, ये चार पैसे जमाकर रहे हैं पूजा के लिए।

महन्त जी ने कहा--नहीं, नहीं, फेंक दो इनके पैसे। बाद को देवगण की ओर जरा कुछ क्रुद्ध-भाव से ताकते हुए उन्होंने कहा--भाई, तुम लोग भी क्या दिमाग़ चाटने के लिए आये हो? परन्तु ब्रह्मा के आग्रह तथा दीवान की सिफ़ारिश के बाद उन्होंने कहा--अच्छा चार आने ले लो इनसे।

महन्त जी के पास से देवगण ब्राह्मण के साथ-साथ दूकान पर डाली के लिए चले। चलते-चलते ब्राह्मण ने कहा--हाँ, तो आपको कितने की डाली चाहिए?

"चार आने की।"

"वाह! चार आने की भी कहीं डाली मिलती है? किस देश के रहनेवाले हैं आप लोग? भला आप लोग यहाँ आये हैं तो बाबा को पेट भर भोजन भी न करावेंगे? यहाँ दस रुपयों से लेकर पचास रुपयों तक की डाली मिलती है।

नारायण ने कहा--एक रुपये से अधिक की डाली मुझे न चाहिए। कितना बड़ा पेट है तुम्हारे बाबा का जो भरने में ही नहीं आता?

अन्त में एक दूकानदार को एक रुपये की डाली लगाने को कहकर ब्राह्मण देवगण को दूधकुमड़ा नामक तालाब में स्नान कराने को ले गया। स्नान से निवृत्त होने पर वे लोग जब दूकान पर आये और

उनकी ओर डाली बढ़ाई गई तब उन्होंने देखा कि डाली में कुल एक ओला*, एक केला, पाँच चावल और दो-चार विल्वपत्र हैं।

वरुण ने डाली हाथों में ले ली। तब ब्राह्मण ने उन्हें दूर से ही मन्दिर दिखा दिया और स्वयं वहीं रह गया। उनके चले जाने पर उसने दूकानदार से अपने हिस्से के छः आने पैसे ले लिये। मन्दिर में प्रवेश करने के लिए भी द्वार पर दक्षिणा देनी पड़ी। अन्त में बड़ी कठिनाई से पूजा करके वे लोग चले। तारकेश्वर से देवगण सीधे कलकत्ता की ओर रवाना हुए।

कलकत्ता

हावड़ा स्टेशन पर देवगण की गाड़ी आ पहुँची। डिब्बे से झाँककर देखने पर उन लोगों को ऐसा जान पड़ा कि मानो रेलवे लाइनों का यहाँ एक बड़ा-सा जाल बिछा हुआ है। जिस ओर वे देखते उस ओर लाइन ही लाइन दिखाई पड़ती। गाड़ियों की भी वहाँ संख्या नहीं की जा सकती थी। किसी लाइन पर मालगाड़ी खड़ी थी, किसी लाइन पर सवारी गाड़ी खड़ी थी, किसी लाइन पर माल या सवारी गाड़ी के कुछ डिब्बे खड़े थे और किसी-किसी लाइन पर केवल इंजन ही खड़े-खड़े धूमोद्गिरण कर रहे थे। किसी ओर से मालगाड़ी आ रही थी तो किसी ओर से कोई डाक या पासिंजर दौड़ी चली आ रही थी। किसी-किसी लाइन पर केवल इंजन ही भों-भों करते हुए दौड़ रहे थे। प्लेटफ़ार्म से चलकर कुछ गाड़ियाँ अपनी अभीष्ट दिशा की ओर बढ़ रही थीं और कुछ चलने को तैयार थीं।

---

* एक विशेष प्रकार का लड्डू जो तारकेश्वर और बर्द्धवान में बिकता है।

प्लेट-फ़ार्म पर बहुत-से साहब, मेम तथा बंगाली बाबू टहल रहे थे। गाड़ी खड़ी भी न हो पाई कि क़ुली लोग डिब्बे-डिब्बे पर टिड्डी-दल की तरह टूट पड़े। पान-बीड़ी, चाय-मिठाई तथा फलवाले अलग अपनी सुरीली आवाज़ से यात्रियों को आकर्षित करने का प्रयत्न कर रहे थे। यात्रीगण भी अपना-अपना सामान स्वयं लेकर या क़ुली के मस्तक पर लादकर डिब्बे में से निकलने लगे। कितने ऐसे भी लोग थे, जिन्हें तीन-तीन, चार-चार दिन से स्नान-आहार करने का अवसर नहीं मिल सका था। उन लोगों की एक अपूर्व प्रकार की मुखश्री थी। तिस पर कोयले के कणों से वस्त्र भी काले हो गये थे। देखने में ऐसा जान पड़ रहा था, मानो ये लोग सीधे प्रेतपुरी से लौटे चले आ रहे हैं।

यात्रियों के साथ स्टेशन से बाहर आकर देवगण ने देखा तो क़तार की क़तार घोड़ा-गाड़ियाँ खड़ी थीं। वरुण ने कहा——पितामह, यहाँ गाड़ीवालों से मोल-तोल करने की आवश्यकता नहीं होती। प्रत्येक स्थान के लिए किराया निर्दिष्ट कर दिया गया है, वहाँ पहुँचकर चुपचाप पैसे दे दीजिए और अपना रास्ता लीजिए। अच्छा, तो अब कहीं घूमने चलना होगा?

ब्रह्मा ने कहा——नहीं भाई, पहले गङ्गा से मेरी मुलाक़ात कराओ, बाद को और कहीं चलना होगा। देखो वरुण, यहाँ आने पर तो एक विचित्र ही प्रकार का भाव मेरे हृदय में उदित हो रहा है। जिस किसी ओर भी मेरी दृष्टि जाती है, उसी ओर ऐसा जान पड़ता है कि मानो यह मेरी सृष्टि नहीं है। किसी और ने यह नई सृष्टि की है।

देवगण के सहित पितामह ने सजल नेत्रों से गङ्गा जी की ओर देखा। गङ्गा जी के वक्ष पर इतने अधिक जहाज़, स्टीमर, डोंगियाँ तथा स्टीमर बोट आदि थे कि उनके कारण जल बिलकुल ढका हुआ था। स्नान के लिए जो घाट बनाया गया है, वहाँ पहुँचकर उन्होंने देखा तो स्नानार्थियों की भीड़ बहुत अधिक थी। घाट पर से ही दृष्टि दौड़ाकर उन्होंने कलकत्ता नगर की ओर देखा तो उन्हें ऐसा मालूम पड़ने

लगा, मानो ऊँची-ऊँची अट्टालिकाओं की माला गूँथकर यह कलकत्ता नगरी बनाई गई है। उन अट्टालिकाओं के बीच-बीच में कितनी ही बड़ी-बड़ी चिमनियाँ भी दिखाई पड़ रही थीं, जिनमें से धुआँ निकल रहा था।

गङ्गा जी के तट पर खड़े होकर ब्रह्मा 'गङ्गा गङ्गा' कहकर फिर रोने लगे। यह देखकर वरुण ने कहा--भाई, आओ हम लोग पितामह को घेरकर खड़े हो जायँ। अन्यथा देश यह बहुत बुरा है। लोग देखेंगे तो खिल्लियाँ उड़ाने लगेंगे और पागल समझकर इनके ऊपर धूल या पानी के छींटे भी फेंकने लगें तो कोई आश्चर्य नहीं।

आँखें मूँदकर ब्रह्मा गङ्गा की स्तुति करने लगे, जिसका आशय इस प्रकार है--हे गङ्गे, तुम समस्त संसार की जननी हो। मनोहर पुष्पमाला के समान तुम शिव के मस्तक पर सुशोभित हुआ करती हो। परन्तु आज मृत्युलोक में तुम्हारी यह कैसी अवस्था देखने में आ रही है? तुम्हारे प्रति लोगों में श्रद्धा-भक्ति नहीं रह गई है! तुम्हारे जल में लोग मल-मूत्र तथा श्लेष्मा का परित्याग करने लगे हैं! ऐसी दशा को प्राप्त होकर भी तुम भला किस सुख की कामना से यहाँ पड़ी हो? देवि, समस्त नदियों में अग्रगण्य होकर भी तुम कलकत्ता में कुछ कर नहीं सकी हो, यह देखकर मैं आश्चर्य में पड़ गया हूँ। तुम समस्त गुणों की आधार हो। क्या इसी कारण से तुमने अँगरेजों की अधीनता स्वीकार की है? तुम्हारा चरण-कमल संसार-रूपी महासमुद्र की तरणी के समान है। तुम्हारे जल के एक कण का स्पर्श करके भी मनुष्य देवलोक से भी अधिक दुर्लभ स्थान प्राप्त करने में समर्थ होता है। परन्तु यह जानकर भी जब लोग तुम्हारी उपेक्षा करते हैं, तब तुम किस आशा से इस भूमण्डल में पड़ी हो? वत्से, मैं तुम्हारे सलिल का स्पर्श करके रो रहा हूँ। और मत रुलाओ मुझे। तुम्हें देख नहीं पाया, इसलिए रास्ते भर मैं रोते ही रोते आया हूँ। यदि तुम्हें मैं आज भी नहीं देख पाता हूँ, तो तुम्हारे जल में

जीवन का परित्याग कर दूँगा। तुम जानती नहीं हो कि किसलिए मैं यह जीर्ण शरीर लेकर भी स्वर्ग छोड़कर इस नरक में आया हूँ। अँगरेजी सरकार ने तुम्हें ऐसा कौन-सा सुख दे रक्खा है कि तुम अपने वृद्ध पिता को भूल जाओगी ? जल में अँगरेजों की सैकड़ों तरणियाँ तैर रही हैं, तट पर उनका बसाया हुआ मुख्य नगर कलकत्ता विराजमान है, क्या इसी सुख से मुझसे स्नेह, ममता का परित्याग कर दिया है तुमने ? क्या इसी सुख से यहाँ स्थायीभाव से जम गई हो ?

भागीरथी ने अपनी तरङ्गमाला से कहा—सखियो, जरा आँख उठाकर देखो तो, तट पर खड़े-खड़े मेरे वृद्ध पिता रो रहे हैं। देखो, देवराज, जल के अधीश्वर, जिनके चरण से मेरी उत्पत्ति हुई है, वे जगत्पति नारायण, ये सब दुःखीभाव से मेरे तट पर खड़े हैं। उनका कष्ट देखकर मुझे भी बड़ा दुःख हो रहा है। भारतवर्ष में इन देवगण का इतना माहात्म्य है कि इन्हें स्मरण किये बिना कोई किसी कार्य का श्रीगणेश ही नहीं किया करता। यहाँ के एक-एक आदमी का यह कर्त्तव्य है कि वह प्रतिदिन प्रातः, सायं तथा मध्याह्न काल में इन देवगण का स्मरण किया करे। आज वही भारत है और वे ही ये देवगण हैं! ये उपेक्षित भाव से गली-गली की राख छान रहे हैं! इनकी यह अवस्था देखकर मेरा हृदय विदीर्ण होता जा रहा है। सखियो, तुम्हें मालूम है कि स्वयं मेरे ही दुःख कितने बड़े हैं! कितनी अधीर हूँ मैं उनके कारण! किन्तु आज इनके इस कष्ट के कारण मेरी वेदना और भी बढ़ गई है। सखियो, यदि सम्राट् का कोई पुत्र या प्रतिनिधि आया होता, तो कितना समारोह होता आज इस कलकत्ता महानगरी में। कलकत्ते में जितने भी बड़े-बड़े आदमी हैं, वे सभी उत्साहपूर्वक आकर योगदान करते उस समारोह में। स्कूलों और कालेजों के विद्यार्थी हाथ में झंडा ले-लेकर आते स्वागत करने के लिए। दूकानदार लोग अपनी-अपनी दूकानें बन्द करके वह

समारोह देखने के लिए आते। अब तक उनके प्रति सम्मान प्रकट करने के लिए तोपें दगने लगतीं। जाने दो, कलि के कुलाङ्गार कुछ करें या न करें, इससे हमारा मतलब नहीं है। हम लोगों को तो अपने कर्त्तव्य का पालन करना है। इसलिए तुम सब मिलकर शीघ्रतापूर्वक उनके चरण धो दो।

तरङ्गमाला ने तट पर धड़ाम-धड़ाम टक्कर मारा, परन्तु देवगण के चरणों में पद-त्राण देखकर चरण धोये बिना ही वह लौट गई। तब कलकल शब्द से रोते-रोते जाकर गङ्गा ने पितामह के चरणों में प्रणाम किया।

गङ्गा को देखते ही ब्रह्मा प्रेम से विह्वल हो उठे। उन्होंने कहा--आ बेटी, आ। रास्ते भर रोते-रोते आया हूँ मैं तेरे लिए। परन्तु तू इतनी निष्ठुर हो गई है कि जरा-सा दिखाई तक नहीं पड़ी! तेरा शरीर इतना मलिन क्यों है? शरीर तेरा इस प्रकार कान्तिहीन और आभरणशून्य क्यों हो गया है?

गङ्गा ने कहा--हे पिता, जरा मेरी दशा तो देखो। कितनी दृढ़ता के साथ बाँधी गई हूँ मैं! इस बन्धन से मुक्त होकर एक पग भी चलना तो सम्भव है नहीं मेरे लिए।

विधाता ने एक बार पुल की ओर देखा। देखते ही आतङ्क से उनका हृदय पूर्ण हो गया। विस्मय से अभिभूत होने के कारण उनकी दृष्टि उसी ओर लगी रह गई।

वरुण ने कहा--पहले-पहल जब यह पुल बना है तब इसे तोड़ने का प्रयत्न शक्ति भर किया था हमने। साइक्लोन (समुद्री तूफ़ान) की भी नियुक्ति की गई थी। उसने भी बहुत थोड़े समय तक युद्ध किया था। कहीं सारा बंगाल नष्ट न हो जाय, इसी आशङ्का से अधिक बल का प्रयोग नहीं कर सका वह। नदी के वक्ष पर तैरनेवाला इस प्रकार का पुल कोई और नहीं है। अठारह लाख रुपये खर्च हुए हैं इसके बनने में। १५३० फ़ुट लम्बा है यह और ४८ फ़ुट चौड़ा।

१८७४ ई० के अक्टूबर मास में पहले-पहल खुला है यह। इस पुल के द्वारा हावड़ा और कलकत्ता को मिला दिया गया है।

गङ्गा ने कहा--पिता जी, तुम विधाता हो। तुम्हारा काम है सब लोगों के भाग्य का विधान करना। भला तुम्हारे चरणों में मैंने ऐसा कौन-सा अपराध किया था जो तुमने मेरे भाग्य में इस तरह का दुःख, इस तरह का क्लेश लिख दिया है! देव-कुल, असुर-कुल और नर-कुल में क्या और भी कोई मेरे समान दुखिया है, जिसे निरन्तर दुःख के अगाध सागर में ही डुबकियाँ लगानी पड़ती हों? राजा जो कुछ करता है, इस मतलब से करता है कि लोगों का दुःख दूर हो। परन्तु वही राजा मुझ अबला पर अत्याचार करने में शक्ति भर कुछ उठा नहीं रखता है। स्थान-स्थान पर मुझे बाँध रक्खा उसने। बाँदी के समान मुझसे जहाज और स्टीमर खिंचवाते-खिंचवाते वह मेरी कमर तोड़े डाल रहा है! परन्तु इतने से भी उसकी इच्छा पूर्ण नहीं हुई। एक सपत्नी भी लाकर बैठाल दी है उसने मेरा जी जलाने के लिए!

"यह क्या कहती हो पुत्री! कोई तुम्हारी सपत्नी भी है यहाँ?"

"हाँ पिता जी, यह रेलगाड़ी एक प्रकार से मेरी सपत्नी ही तो है। मैं सभी वर्ण, धर्म और सम्प्रदाय के लोगों को, कौन पापी है और कौन पुण्यात्मा है, इस बात का विचार किये बिना ही सन्तोषपूर्वक अपनी गोद में स्थान देती रही हूँ। अब यही कार्य रेलगाड़ी कर रही है। पहले नौकाओं में रखकर व्यापार की चीजें मेरे ही ऊपर से आया करती थीं, इस कारण महाजन लोग समय-समय पर श्रद्धा-भक्ति के साथ मेरी पूजा किया करते थे। अब मेरा इतना भी सौभाग्य न रह गया कि अपने वक्ष पर लादकर वे सब चीजें मैं एक स्थान से दूसरे स्थान को ले जा सकूँ। मेरे जल में शरीर-पात होने पर मनुष्य को स्वर्ग-प्राप्ति होती है, इस विचार से लोग मेरे प्रति थोड़ी-बहुत

भक्ति किया करते थे। परन्तु उनके मन से वह भाव भी क्रमशः दूर होता जा रहा है। बात यह है कि वह जान-बूझकर जीवों को ढो-ढोकर वाराणसी आदि स्थानों में, जो स्वर्ग के द्वार-स्वरूप हैं, बात की बात में रख आती है। इसके ये सुख के दिन देखकर मेरे सारे मगर, घड़ियाल तथा कछुए आदि निकल भागे हैं और स्टेशन-मास्टर आदि के रूप में वहाँ विराजमान हो रहे हैं। मेरे अधिकार से मछली-मेंढक तक निकल गये हैं और वे सब रेलवे के आफ़िसों में छोटे-मोटे क्लर्क बन बैठे हैं। धीवर भी उन आफ़िसों में पहुँचकर ऊँचे-ऊँचे पदों पर विराजमान हो गये हैं और वहाँ भी समय-समय पर कटिया लगाकर वे लोग उन मछलियों का शिकार कर ही बैठते हैं। पिता जी, मेरे सारे सुखों का अन्त हो चुका है अब। निरर्थक दुःख भोगने के लिए आपने मुझे क्यों छोड़ रक्खा है यहाँ ? एक तो मैं यों ही दुःख से कातर हूँ, दूसरे कितने ही वृद्ध पिता और मातायें आ-आकर अपनी प्राणों से अधिक प्रिय सन्तान के शव का प्रवाह करके अधीरभाव से रोती हैं मेरे तट पर। पति आकर पत्नी को चिता पर रखकर विलाप करता है और धैर्य्य का अवलम्बन करने में असमर्थ होकर--उस जलती हुई चिता पर कूद पड़ने का उद्योग करता है। कितनी ही सती-साध्वी तरुणियाँ पति की अन्त्येष्टि क्रिया के सम्पादन के लिए आया करती हैं हमारे तट पर। म था पीट-पीटकर वे इतना रोती हैं पिता जी! मेरा जब सभी कुछ जा चुका है तब ये ही हृदय-विदारक दृश्य मुझे क्यों देखने पड़ते हैं।

गङ्गा उस समय बहुत ही अधीर थीं। उनकी दुःख-गाथा किसी प्रकार समाप्त ही नहीं हो पाती थी। कुछ क्षण तक सिसकती रहने के बाद उन्होंने फिर कहना आरम्भ किया--आजकल देश की ही ऐसी दशा क्यों हो गई है ? पहले तो वृद्ध माता-पिता को छोड़कर उपयुक्त पुत्र भागता नहीं था ! पहले तो पति पत्नी को असहाय करके असमय में ही संसार से चला नहीं जाया करता था ! पहले तो पत्नी

पति से विमुख होकर उसे इस प्रकार का मनस्ताप दिया नहीं करती थी! देश की ऐसी अवस्था क्यों हो गई पिता जी? कालचक्र के हेर-फेर के कारण क्या आपके हाथ का लिखा हुआ भी उलटा हो गया है?

ब्रह्मा ने कहा—नहीं बेटी, मेरे हाथ का लिखा हुआ ठीक ज्यों का त्यों बना हुआ है। परन्तु लोगों ने शारीरिक नियमों का उल्लंघन करते-करते इस प्रकार की दुरवस्था उत्पन्न कर दी है। जो भी हो, भागीरथी, तुम्हारे दुःख का हाल सुनकर मैं भी बहुत दुःखी हुआ हूँ। यह सब भाग्य का फेर है। भाग्य पर निर्भर रहकर तुम अपने मन का दुःख दूर करो।

गङ्गा ने कहा—भाग्य का फेर है अवश्य पिता जी, किन्तु मेरे समान भाग्यहीन और कौन है? देखते तो हो कि केवल ख़ूब कस-कसकर मुझे बाँधकर ही नहीं सन्तोष कर लिया उन लोगों ने। कितना भार लादे रहते हैं रात-दिन! घोड़ागाड़ियों का तो बराबर ताँता बँधा रहता है मेरे ऊपर। हज़ारों आदमी इस पार से उस पार और उस पार से इस पार मेरे ऊपर से होकर आते-जाते रहते हैं। सभी के भाग्य में कम से कम इतना सुख तो अवश्य ही लिखा होता है कि वह ज़रा देर तक विश्राम कर लें। परन्तु मेरे भाग्य में वह भी नहीं लिखा है। मुझे तो निमेषमात्र का भी समय नहीं मिल पाता। रात्रि के समय थककर चूर हो जाने पर जब मैं ज़रा-सा शयन करने का विचार करती हूँ, उसी क्षण धड़धड़ाती हुई गाड़ी मेरे वक्ष पर से होकर निकल जाती है और उसके कारण मेरी निद्रा भङ्ग हो जाती है। इसके सिवा मेरे दोनों तटों पर विभिन्न वस्तुओं के इतने अधिक कल-कारख़ाने हैं कि उनकी घड़घड़ाहट तथा धुएँ के कारण मुझे प्राणान्तक क्लेश होता है।

उपर्युक्त प्रकार से अपनी दुःख-गाथा कहते-कहते गङ्गा का गला रुँध गया। फफक-फफककर वे रोने लगीं। ज़रा देर के बाद किसी प्रकार अपने आपको सँभालकर उन्होंने कहा—पिता जी, अँगरेज़ी सरकार के कारण मुझे अब किसी प्रकार भी शान्ति नहीं है। दुःख-

क्लेश के कारण मेरे पेट में यदि कहीं रेता पड़ जाता है तब उस ओर ध्यान जाते ही सरकारी कर्मचारी उसे काटकर खण्ड-खण्ड कर डालते हैं। जिस ओर जाने की मुझे इच्छा नहीं होती उस ओर काटकर सरकार जबर्दस्ती मुझे ले जाती है। अब मैं सोचा करती हूँ कि हाय, मेरे जिस वेग को शङ्कर के सिवा और कोई नहीं सँभाल पाता था, जिस वेग में पड़कर दिग्गज ऐरावत तक बह गये थे, उसी वेग को आज अँगरेज अपने अधीन किये हुए हैं।

गङ्गा की दुःखभरी बातें सुनते-सुनते ब्रह्मा स्वयं अधीर हो उठे। वे कातर होकर हाय-हाय करने लगे। इधर गङ्गा अपने हृदय का पूर्ण उद्गार निकाले बिना शान्त होने को नहीं थीं। उन्होंने कहा--पिता जी, किसी समय मेरे भी अहङ्कार का ठिकाना नहीं था। सपत्नी को जब देखा कि उन्होंने पति के वक्षस्थल पर चरण रख दिया तब मैं झटपट उनके मस्तक पर जाकर बैठ गई। उसी का फल है कि आज छतीसों जाति के लोग पैरों से रौंद रहे हैं मुझे। अब जब मेरा माहात्म्य नहीं रह गया है तब भला मेरी मृत्यु क्यों नहीं हो जाती? लोगों की मेरे प्रति श्रद्धा-भक्ति अब है नहीं। नाविक लोग नौका चलाते ही चलाते दाँड़ पर बैठकर मेरे ऊपर मल-मूत्र कर देते हैं। स्नान करते-करते कोई मेरे जल में थूक देता है, कोई नाक छिनक देता है! सरकार ने मेरे ऊपर ऐसी बुरी तरह से अधिकार जमा रक्खा है कि मेरे तट पर बैठकर मछलियाँ पकड़नेवालों या मुर्दा फूँकनेवालों तक से कर लिये बिना नहीं शान्त होती।

ब्रह्मा ने कहा--वत्से गङ्गे, तुम्हारा दुःख दूर होने में अब विलम्ब नहीं है। तुम्हें मैं शीघ्र ही स्वर्ग ले जाऊँगा। मृत्युलोक के लिए रवाना करते समय मैंने तुमसे जो कुछ कहा था, वह सब क्या तुमने भुला दिया है? मैंने कहा था कि हे भागीरथी, जिस समय वन नगर बन जायँगे, और नगर वन के रूप में परिणत हो जायँगे, जिस समय किसी-किसी स्थान पर तुम्हारी धारा प्रवाहित होती रहेगी

और किसी-किसी स्थान पर तुम सूख जाओगी, जिस समय तुम्हारे प्रति लोगों को श्रद्धा-भक्ति नहीं रह जायगी, उसी समय तुम लौटकर स्वर्ग चली आओगी। मेरी ये सभी बातें तो अब घटित होने लग पड़ी हैं। अब तुम्हारे लिए दुःखी होने की तो कोई बात है नहीं! थोड़े दिनों तक और धैर्य धारण किये रहो, बाद को किसी शुभ मुहूर्त्त में मैं तुम्हें स्वर्ग में बुला लूँगा।

ब्रह्मा ने बहुत कुछ समझा-बुझाकर गङ्गा को शान्त किया। तब थोड़ी बहुत घरेलू बातें करने के बाद वे उनसे बिदा हुए।

पुल पार करके देवगण ने कलकत्ता नगर में प्रवेश किया। तब वरुण ने कहा—पितामह, यहाँ बहुत सावधान होकर रहना है। चोरी, धोखा-धड़ी तथा मिथ्या के ही बल पर मानो कलकत्ता खड़ा है। इस नगर की नींव जाबचार्नाक नामक एक अँगरेज ने २४ अगस्त सन् १६९० ई० को डाली थी। जाबचार्नाक ईस्ट इंडिया कम्पनी की हुगलीवाली कोठी में एजेंट था। उससे पहले यहाँ कोई ऐसा नगर नहीं था। परन्तु फिर भी यहाँ सती के किसी अङ्ग के गिरने के कारण इस स्थान का माहात्म्य था और यह कालीक्षेत्र के नाम से प्रसिद्ध था।

नारायण ने कहा—क्यों वरुण, कालीक्षेत्र से बदलकर इस स्थान का नाम भला कलकत्ता क्यों हो गया?

इस बार शनि का लड़का उपशनि भी देवगण के साथ में था। जमालपुर के रेलवे के कारखाने में वह काम की तलाश में आया था। ब्रह्मा के आग्रह से वरुण ने तार देकर उसे बुलाया था, इससे हावड़ा स्टेशन पर आकर वह भी इन सबके साथ हो गया था। वरुण कुछ कहने ही को थे कि वह झट बोल उठा—मैं बतलाता हूँ चाचा जी! मुझे मालूम है। दादी एक बार कह रही थीं कि पहले इस स्थान पर एक बहुत बड़ा और घना वन था। वह वन कटवाकर अँगरेजों ने नगर बसाया है। वन कटते समय क़ुलियों पर निगरानी रखने के लिए जो अँगरेज नियुक्त था, एक दिन एक कटे हुए वृक्ष पर पैर रखकर उसने पूछा—इस स्थान

का नाम क्या है ? प्रश्न उसने अँगरेज़ी में किया था इसलिए उसका अर्थ क़ुलियों की समझ में न आया। परन्तु अनुमान उनका यह हुआ कि साहब इस पेड़ के कटने का समय जानना चाहता है। इससे एक क़ुली झट बोल उठा——कल कटा। बस, उसी समय से इस स्थान का नाम पड़ गया कलकटा (Calcutta)। बाद को इसे सुधार कर लोग कलकत्ता कहने लगे।

वरुण ने ब्रह्मा का हाथ पकड़ लिया। उन्होंने कहा——यहाँ सड़क पर बड़ी भीड़ होती है। बहुत सावधानी के साथ चलना होगा। अन्यथा एक बार यदि साथ छूटा, तब फिर मुलाक़ात होनी असम्भव हो जायगी। यह कहकर आगे-आगे वे बड़ा बाज़ार की ओर चले। देवराज तथा नारायण ने भी उनका अनुसरण किया। सड़क पर अँगरेज़, बंगाली, यहूदी, मुसलमान, काफ़ी, चीनी, काबुली आदि प्रायः सभी देशों के लोग चल रहे थे। ट्राम, मोटर तथा घोड़ा-गाड़ी आदि के कारण रास्ता मिलना कठिन हो रहा था। एक ओर बैलगाड़ियों का अलग ताँता था। इन सबके कारण पैदल चलनेवालों के लिए रास्ता मिलना कठिन था। सड़क की बग़ल में आमने-सामने क़तार की क़तार ऊँची-ऊँची अट्टालिकायें थीं। उनके नीचे क्रम-बद्ध भाव से दूकानें सजी हुई थीं। उन सबकी शोभा देखकर देवगण चकित हो गये। ब्रह्मा ने कहा——वरुण, ऐसा नगर तो मैंने कभी देखा ही नहीं।

नारायण ने सड़क पर चलनेवालों की इस प्रकार की व्यग्रता का कारण जानने की इच्छा प्रकट की। तब वरुण ने कहा——ये सभी लोग पैसे की खोज में दौड़ रहे हैं। इस कलकत्ता नगरी में लक्ष्मी की अधिकता है। यहाँ वे भिन्न-भिन्न रूपों में विराजमान हैं। जो लोग चतुर हैं, वे यहाँ राह चलते पैसा पैदा कर रहे हैं और जो लोग हम लोगों की तरह के हैं, उन्हें पेट के लिए भी लाला पड़ा रहता है।

बड़ा बाज़ार में पहुँचकर देवगण ने एक दोमंजिले पर स्थान ग्रहण किया। वहाँ सामान आदि रखकर उन्होंने कुछ भोजन किया,

बाद को थोड़ी देर तग विश्राम करके वे लोग घूमने के लिए फिर निकल पड़े। घूमते-घूमते देवगण इम्पीरियल बैंक के पास पहुँचे। वरुण ने देवगण को उस बैंक के सम्बन्ध की बहुत-सी बातें बतलाईं। उन्होंने कहा——यहाँ रुपयों के बदले में नोट और नोट के बदले में रुपये मिला करते हैं। लोग अपने रुपये सुरक्षित रखने के लिए इस बैंक में जमा कर दिया करते हैं। विदेशों से व्यापार करने में भी इस बैंक के कारण बड़ी सुविधा हुआ करती है। भीतर ले जाकर उन्होंने सबको दिखलाया। तोड़े के तोड़े रुपये और गड्ड की गड्ड नोटें देखकर देवराज दंग रह गये।

बैंक से निकलकर देवगण सड़क की पटरी-पटरी फिर चले। कुछ दूर चलने के बाद एक गली मिली। अकस्मात् उस गली की ओर विधाता का ध्यान आकर्षित हुआ। गली में एक तिमंजिले मकान के पिछवाड़े मोरी के पास एक आदमी बैठा हुआ था। देवगण ने देखकर अनुमान किया कि यह बैठा पेशाब कर रहा है। परन्तु काफ़ी समय बीत जाने पर भी जब वह नहीं उठा तब कुछ कौतूहल में आकर नारायण उसकी ओर बढ़े। उन्हें उस ओर आते देखकर तेजी से पैर बढ़ाता हुआ वह एक ओर चला गया। नारायण चकित होकर चारों ओर देखने लगे। अन्त में उन्हें तिमंजिले पर से लटकता हुआ एक दोना दिखाई पड़ा। यह देखकर नारायण उस आदमी की ही तरह मोरी के पास बैठ गये। तब दोना क्रमशः उनकी पहुँच में आगया और धागे से उसे खोलकर वे चलते बने।

हँसते-हँसते आकर नारायण ने वह दोना विधाता के सामने खोला। दोना विभिन्न प्रकार की मिठाइयों से भरा हुआ था। पान के कई बीड़े उसमें रक्खे हुए थे। एक पत्र भी था। पत्र किसी स्त्री का लिखा हुआ था। उसमें लिखा था भाई, आज अवश्य ही आना। आज आने पर तुम्हें विफल न होना पड़ेगा। घर के सब लोग कुछ विशेष कार्य से जानेवाले हैं। इससे तुम निश्चिन्त भाव से यहाँ रात्रि व्यतीत कर सकोगे।

देवराज ने मिठाई का दोना नारायण के हाथ से लेकर उपशनि को दे दिया और पत्र फाड़कर फेंक दिया। वहाँ से चलकर वे सब हाई-कोर्ट पहुँचे। वरुण ने ब्रह्मा आदि को हाईकोर्ट की उपयोगिता समझाई और भीतर ले जाकर जजों के बेंच, वकील-बैरिस्टरों के बैठने के स्थान तथा आफ़िस आदि दिखलाया। हाईकोर्ट की व्यवस्था देखकर देवराज बहुत प्रसन्न हुए। उन्होंने कहा कि लौटकर जाने पर मैं स्वर्ग में भी एक ऐसा ही हाईकोर्ट बनवाऊँगा।

ब्रह्मा चलते-चलते बहुत थक गये थे। हाईकोर्ट में एक स्थान पर वे बैठ गये, इसलिए वहाँ कुछ देर तक देवगण को रुकना पड़ा। बाद को जरा देर के विश्राम के बाद वे लोग फिर चले। टाउनहाल के पास पहुँचकर वरुण ने कहा——इस सुरम्य भवन का नाम है टाउनहाल। सन् १८१८ ई० में सात लाख रुपयों के व्यय से यह बना है। इसके निर्माण में कलकत्ता के निवासियों का रुपया लगा हुआ है। यहाँ सभायें आदि हुआ करती हैं। परन्तु भाड़ा दिये बिना किसी को टाउन हाल में सभा करने की आज्ञा नहीं मिलती।

टाउन हाल से चलकर देवगण ईडेन गार्डन में गये। वहाँ की शोभा देखकर वे मुग्ध हो गये। टहलते-टहलते वे लोग, विशेषतः ब्रह्मा थक गये थे, अतएव एक बेंच पर बैठकर सब लोग बग़ीचे की प्रशंसा करने लगे। इन्द्र ने कहा——सचमुच मेरे नन्दन-कानन से यह बग़ीचा कहीं अच्छा है। कितनी अच्छी-अच्छी सड़कें और पगडंडियाँ बनी हैं इसमें। विश्राम के लिए सुखदायक कुंज हैं। देखो, वह फ़व्वारा कितना मनोहर है।

नारायण के पूछने पर वरुण ने बतलाया कि यह बग़ीचा लार्ड आकलैंड नामक गवर्नर-जनरल के शासन-काल में बनकर तैयार हुआ है और उनकी बहन के नाम के अनुसार इसका नामकरण हुआ है। यहाँ आकर वायु-सेवन करने का सभी को अधिकार है।

ईडेन गार्डन देखकर देवगण स्थान पर लौट आये। तरह-तरह की बातों में उन्होंने रात्रि व्यतीत की। प्रातःकाल वरुण ने कहा——आप

लोग जरा देर तक ठहरिए, तब तक मैं कलकत्ता के दक्षिणी भाग में पानी बरसाकर लौट आता हूँ। यहाँ मैं यदा-कदा सभी ऋतुओं में पानी बरसाया करता हूँ।

देवगण स्नान आदि से निवृत्त होकर भोजन की व्यवस्था में लगे। अन्त में भोजन भी तैयार हो गया, परन्तु वरुण लौटकर न आये। इधर ये लोग नगर देखने के लिए अधीर हो रहे थे। अन्त में भोजन करके वे निकल पड़े। अन्यमनस्कभाव से एक सड़क की मोड़ पर खड़े थे, इतने में चश्मा लगाये हुए एक मुसलमान वहाँ आ पहुँचा। ब्रह्मा के समीप जाकर उसने कहा––बाबा, आँखों से शायद तुम्हें कुछ धुँधला दिखाई देता है।

ब्रह्मा––नहीं तो।

मुसलमान––नहीं बाबा, छिपाने की इसमें कोई बात नहीं है। इस रोग के कारण मैं ख़ुद बड़ी तकलीफ़ उठा चुका हूँ। इसी लिए कह रहा हूँ। अभी चार पैसे के ख़र्च से आप अच्छे हो सकते हैं। यह दवा इतनी अच्छी है कि इसके लगाने से आँख में कभी कोई भी रोग नहीं हो पाता।

ब्रह्मा जरा देर तक सोचते रहे। बाद को उन्होंने कहा––अच्छी बात है, चार पैसे की आँख की दवा दे ही दो मुझे। बुढ़ाई की आँखें हैं, कोई न कोई शिकायत तो इन्हें लगी ही रहती है।

मुसलमान ने कहा––मैं इस काम के लिए पैसे नहीं लेता। जिसे तकलीफ़ देखता हूँ उसे यों ही दवा बतला देता हूँ। मैं दवा लिख देता हूँ। आप पंसारी के यहाँ से ख़रीद लीजिएगा और ख़ूब घोंटकर उसे आँखों पर लेप कर दीजिएगा। तीन-चार दिनों में आपकी आँखों की रोशनी बहुत बढ़ जायगी।

हाथ में पुर्ज़ा लेकर नारायण ने पूछा––कहाँ मिलेगी यह दवा?

मुसलमान ने कहा––किसी भी पंसारी की दूकान में यह मिल जायगी। परन्तु कहीं कोई आपको धोखा देकर चीज गड़बड़ न दे दे। यह कलकत्ता शहर है साहब! एक से एक धोखेबाज पड़े हैं यहाँ। अच्छा

एक काम कीजिए, इस सामनेवाले पंसारी के यहाँ से ख़रीद लीजिए। दाम तो यह कुछ कसकर जरूर लगाता है लेकिन चीज़ें इसके यहाँ बहुत अच्छी रहती हैं।

मुसलमान वहाँ से चलता बना। दूकान पर जाकर देवगण ने जब पुर्ज़ा दिखलाया तब पंसारी ने कहा--एक रुपया हुआ इसका दाम।

इन्द्र ने कहा--एक रुपया! जिसने यह दवा बतलाई है, वह तो कह रहा था कि केवल चार पैसे में मिल जायगी यह!

पंसारी ने कहा--पा सकते हैं आप लोग चार पैसे में। बहुत कोई अगड़म-बगड़म की चीज देकर आपसे पैसे ऐंठ लेगा। हमारे यहाँ बेईमानी का सौदा नहीं है साहब! आपसे सोलह आने लेकर राजा हो जायँगे हम! ईश्वर का भी तो डर है!

ब्रह्मा ने कहा--जाने दो भाई, बारह आने ले लो।

दूकानदार ने कहा--अच्छी बात है, बोहनी का समय है, आपसे बारह आने ही लूँगा।

दवा लेकर देवगण स्थान की ओर चले। परन्तु रास्ता भूलकर वे सब बड़ा बाज़ार में भटकने लगे। इतने में वरुण आ पहुँचे। उन्होंने कहा--तुम्हें खोजते-खोजते मैं कब से परेशान हो रहा हूँ।

ब्रह्मा ने उत्साहपूर्वक वरुण को अपनी आँख की दवा दिखलाई। उन्होंने कहा--केवल बारह आने में ऐसी उत्तम ओषधि मिल गई।

पुड़िया खोलकर वरुण ने देखा तो उसमें थोड़ी-सी बकरी की लेंड़ी, थोड़ा-सा लकड़ी का बुरादा और थोड़ा-सा मकड़ी का जाला रक्खा हुआ था। देखते ही वरुण ठहाका मार कर हँस पड़े। उन्होंने कहा, यहाँ दूकानदार और दलाल मिलकर इसी तरह रोज कितने आदमियों को ठगते रहते हैं।

वरुण देवगण को लिये हुए रानी स्वर्णमयी की चौक में पहुँचे। उसके बाद वे मनोहरदास के चौक में गये। वहाँ भिन्न-भिन्न वस्तुओं की दूकानों की सजावट देखकर ये लोग मुग्ध हो गये। वहाँ से घूमते-

घूमते वे लोग स्थान पर गये। वरुण ने रास्ते में ही एक दूकान पर थोड़ी-सी मिठाई ख़रीद ली थी, इसलिए स्थान पर पहुँचकर सब लोगों ने जलपान किया।

जरा देर तक विश्राम करने के बाद देवगण फिर नगर देखने के लिए निकले। इस बार वरुण ने एक गाड़ी कर ली और बहुत दूर तक घूम आये। लौटते समय चितपुर रोड से वे लोग आ रहे थे। इतने में आफ़िसों से निकलकर झूम-झूमकर घर की ओर जाते हुए कुछ बाबू लोग उन्हें दिखाई पड़े।

समस्त दिन आफ़िस में क़लम घिसते-घिसते उन सबका मुँह सूख गया था। किसी के हाथ में पान था, किसी के हाथ में एक दोने में जरा-सी मिठाई थी। सड़क पर पानी का छिड़काव किया हुआ था। उसी पर से होकर वे लोग तेज़ी के साथ बढ़े जा रहे थे। सड़क की बग़ल में आमने-सामने दोमंज़िलों और तिमंज़िलों के बरामदों में बैठी हुई वेश्यायें पान के बीड़े कूँच रही थीं। किसी-किसी के मुँह में फ़र्शी का नर्चा भी लगा हुआ था। उन सबकी दृष्टि सड़क की ही ओर लगी हुई थी। किसी बाबू के शरीर की ओर, किसी के कपड़ों की ओर और किसी की चाल की ओर ताक-ताककर वे खिल्लियाँ उड़ा रही थीं। इतने में सड़क पर से होकर एक फ़िटिन निकली। कोचवान चलो हटो की आवाज़ लगाता हुआ घोड़े की पीठ पर चाबुक पर चाबुक जमाकर हाँकता चला गया। इससे बाबुओं का एक दल बग़ल होकर बरामदे के नीचे खड़ा हो गया। उधर एक वेश्या एक रसिक बाबू की ओर जरा रहस्यमयभाव से ताककर पान की पीक गिराने जा रही थी किन्तु अकस्मात् वह बाबुओं के उस दल में से एक व्यक्ति के मस्तक पर पड़ गई। उन बेचारों ने जैसे ही मस्तक ऊपर करके देखा, वेश्यायें तालियाँ बजा-बजाकर हँसने लगीं। लज्जित होकर वहाँ से वे चल पड़े।

बाबुओं के इस दल में दो-एक तरुण थे और उनके ख़ून की

गर्मी अभी तक शान्त नहीं हुई थी। इससे अपने एक सहकर्मी का अपमान असह्य हो जाना उनके लिए स्वाभाविक था। वेश्याओं की ओर त्योरियाँ बदलकर उन्होंने कहा––इतना अधिक दुस्साहस हो गया है तुम लोगों को कि सार्वजनिक सड़क पर चलने में व्याघात डालती हो? अदालत में मामला दायर कर दिया जायगा, ठिकाने पर आ जायगा दिमाग़ तुम्हारा। करती हैं वेश्या-वृत्ति, दिमाग़ इतना चढ़ा हुआ है!

ये बातें सुनते ही वेश्यायें खिलखिलाकर हँस पड़ीं। उनमें से एक ने कहा––जाओ, जाओ, रहने दो बकने को! हम वेश्या-वृत्ति करती हैं तो क्या हुआ? तुम्हारे—जैसे दस बाबुओं को खिला सकती हैं। पीसते तो रहे हो दिन भर दफ़्तर में तुम, क्या लेकर लौट रहे हो? हम लोग तो यहीं घर में बैठे-बैठे घंटे भर में आठ-आठ, दस-दस रुपये ऐंठ लेती हैं! तीन-तीन, चार-चार पीढ़ी तक क़लम घिसकर भी तुम लोग जो नहीं कर सकते हो, वह हम अपनी डील से करके दिखा देती हैं। भगवान् की दया से इसी कलकत्ते में दो-दो, तीन-तीन मकान हैं, शरीर पर दो-दो, तीन-तीन हज़ार के गहने हैं। तुम्हारे-जैसे बाबू को नौकर रख सकती हैं हम।

ब्रह्मा ने कहा—वरुण, दफ़्तरों के बाबुओं की यह दुरवस्था देखकर मुझे बड़ी दया आ रही है। घर का पैसा ख़र्च करके ये लोग शिक्षा ग्रहण करते हैं, रात में आँखें फोड़ फोड़कर परीक्षायें पास करते हैं, अन्त में चलकर उसका यह फल होता है? अच्छा, तुम ज़रा इनके पारिवारिक जीवन का हाल बतलाओ।

वरुण ने कहा––पितामह, इन लोगों का पारिवारिक जीवन बहुत ही दुःखमय है। पैसे इन लोगों को बहुत थोड़े मिलते हैं, इससे कल-कत्ता–जैसे शहर में सादा जीवन बिताना कठिन होता है। परन्तु इन लोगों को तो इन्हीं इने-गिने पैसों के बल पर बाबूगिरी भी दिखानी पड़ती है। परिणाम यह होता है कि इनके ऊपर दूकानों का बिल सदा ही

चढ़ा रहता है और तनख़्वाह के रुपये हाथ में आते ही साफ़ हो जाते हैं। इन बाबुओं में से कितने तो ऐसे होंगे जो पहुँचकर देखेंगे कि घर में तेल नहीं है, नमक नहीं है या ये सब चीजें हैं तो कोयले के ही बिना चूल्हा नहीं जल सका है। इससे फिर उलटे पाँव इन्हें बाजार दौड़ना पड़ेगा। इधर गृहिणी की माँगें अलग पेश होती रहती हैं। वे रोज किसी न किसी चीज के लिए मचलती रहती हैं और कभी-कभी माँग न पूरी होने पर आत्महत्या तक करने की धमकी देती रहती हैं। ये बेचारे सबेरे आधा पेट खाकर दौड़ते हुए आफ़िस जाते हैं, वहाँ दिन भर अफ़सरों की घुड़कियाँ सहते रहते हैं, और लौटकर जब घर आते हैं तब इन्हें गृहिणी की डाँट खानी पड़ती है।

विधाता ने कहा—देखो वरुण, मैं अपने मनुष्यों के भाग्य में सुख लिखता अवश्य हूँ, परन्तु किस व्यक्ति को कितना सुख मिलेगा और किस व्यक्ति को कितना दुःख मिलेगा, यह सब विस्तारपूर्वक मैं नहीं लिखता हूँ। यह सब लिखने के लिए मुझे न तो समय होता है और न मनुष्य के मस्तक में पर्याप्त स्थान ही होता है। लोगों को जो इतने क्लेश मिलते हैं, उसके कारण वे स्वयं होते हैं। अपनी मूर्खता के कारण वे नये-नये अभावों तथा दुःखों की सृष्टि करते रहते हैं। मैं तुम्हें विश्वास दिलाकर कहता हूँ कि ये बाबू लोग बाबूगिरी का मोह छोड़कर यदि वैज्ञानिक ढंग से खेती-बारी करें, अथवा किसी दस्तकारी या व्यापार में लग जायें तब ये अवश्य सुखी हो सकते हैं। क्यों ये निरर्थक बाबूगिरी के फेर में पड़कर प्राण देते रहते हैं ?

साँझ हो चली थी। इसलिए देवगण स्थान की ओर लौटे। एक मिठाई की दूकान के सामने पहुँचकर वरुण ने कहा कि इस समय खाने के लिए यहीं से थोड़ा-सा सन्देश ले लेना चाहिए, रात को अब चूल्हा कौन जलावेगा ? ब्रह्मा ने भी इस प्रस्ताव का अनुमोदन किया। तब देवगण दूकान की ओर झुके। वहाँ पहले से ही एक बाबू सन्देश का मोल-भाव कर रहे थे। देखने में वे स्वरूपवान् थे, वस्त्र

भी बढ़िया पहने हुए थे, काफ़ी ठाट-बाट से थे। अस्तु, भाव पटाकर भोजन के लिए निर्दिष्ट किये गये स्थान पर वे जम गये। पहले उन्होंने आध सेर लिया, बाद को आध आध सेर लिया और उसे भी खाकर आध सेर फिर तौलाया। इस बार तीन-चार सन्देश मुँह में डालने के बाद ही 'वाक वाक' करके उन्होंने ऐसा भाव किया कि मानो अब इनका अन्न-प्रासन तक का अन्न निकलना चाहता है। यह देखकर दूकानदार ने कहा——ज़रा बाहर चले जाइए साहब, बाहर जाइए, यहाँ न क़ै कीजिए। दूकानदार के मुँह से इस बात का निकलना था कि वे उठ खड़े हुए और दो-एक बार वाक वाक करने के बाद नव दो ग्यारह हो गये।

दूकान पर जितने लोग थे, वे सब, विशेषतः देवगण यह देखकर चकित हो गये कि एक धोखेबाज़ आदमी किस तरह पैसा ख़र्च किये बिना भी सन्देश खा सकता है। दूकानदार ने भी एक रूखी हँसी हँसकर कहा——वह आदमी दाम देकर नहीं गया तो न सही, परन्तु हँसा वह खूब गया सबको!

सन्देश ख़रीदकर देवगण स्थान पर गये और खा-पीकर लेट गये। तरह-तरह की बातें करते-करते उन लोगों ने रात्रि व्यतीत की। दूसरे दिन प्रातःकाल स्नान-ध्यान तथा भोजन से निवृत्त होकर वे लोग फिर घूमने के लिए निकले। पहले-पहल वे लोग एसियाटिक म्युजियम में गये और उसे देखकर बहुत प्रसन्न हुए। म्युजियम से निकलकर वे लोग टहलते-टहलते पार्क स्ट्रीट पर पहुँचे। वहाँ साहबों की बस्ती देखकर वे अपर सरकुलर रोड पर पहुँचे। वरुण ने कहा कि यही एक प्रकार से कलकत्ता की पूर्व दिशा की सीमा है। वहाँ से चलकर और कितने ही स्थानों को देखते हुए वे फ़ोर्ट विलियम नामक क़िले के पास पहुँचे। वरुण ने बतलाया कि इँग्लैंड के बादशाह विलियम चतुर्थ के राजत्वकाल में बनाया गया है यह क़िला और उन्हीं के नाम के आधार पर इसका नामकरण हुआ है। भीतर जाकर क़िले को देखने के बाद देवगण, विशेषतः देवराज ने उसकी बड़ी प्रशंसा

की और कहा कि ऐसा ही एक क़िला यदि हमारे पास भी होता तो समय-समय पर भागकर हमें क्षीर-सागर में क्यों शरण लेनी पड़ती।

फ़ोर्ट विलियम को देख लेने के बाद वरुण अक्टरलनी मनुमेंट के पास पहुँचे। उन्होंने कहा कि यह जनरल अक्टरलनी की स्मृति-रक्षा के निमित्त बनाया गया है और इस पर चढ़कर डाइमंड हारबर तक देखा जा सकता है। अन्त में सब लोग उस मनुमेंट के ऊपर गये। वृद्ध ब्रह्मा तक वरुण के सहारे से ऊपर चढ़कर देखने का लोभ नहीं संवरण कर सके। वहाँ से चलकर प्रेसिडेंसी जेल के पास से होते हुए वे स्थान पर आगये।

दूसरे दिन निद्रा भंग होते ही ब्रह्मा धोती उठाकर गंगा-स्नान के लिए चल पड़े। नारायण आदि ने भी उनका अनुसरण किया। जगन्नाथ-घाट पर वे लोग पहुँचे। घाट पर स्नानार्थियों का अच्छा जमाव था। परन्तु बंगाली उनमें प्रायः नहीं के बराबर थे। अधिकांश बिहार और संयुक्त-प्रान्त के निवासी थे, जो जीविका-वश वहाँ पड़े हुए थे। भक्तिपूर्वक स्नान करके वे सब गङ्गा जी की स्तुति कर रहे थे। नौकाओं की भी वहाँ अधिकता थी।

एक बार चारों ओर ताककर पितामह ने जल में प्रवेश किया। कुछ फल और मिष्ठान्न साँझ को ही उन्होंने मँगवा लिया था। "गङ्गे गङ्गे" कहकर उसे उन्होंने जल में फेंक दिया। यह देखकर गङ्गा जी ने कहा—पिता जी, आपका दिया हुआ फल और मिष्ठान्न मैं नहीं ग्रहण कर पाती हूँ। अँगरेजों ने मेरे हाथ-पैर इस तरह बाँध रक्खे हैं कि मुझमें किसी भी वस्तु को ग्रहण करने की शक्ति नहीं रह गई है। करवट बदलकर लेटने तक की शक्ति नहीं रह गई है मुझमें। पहले कितने गाँव, कितने नगर डाल लिये हैं मैंने अपने मुख में, किन्तु अब दो कचौड़ियाँ तक खाने की शक्ति नहीं रह गई है मुझमें। पिता जी, मैंने जैसे कर्म किये हैं, वैसे ही फल भोग रही हूँ। यह सब

दुर्दशा मुझे भोगनी ही थी। अन्यथा भला कोई भी स्त्री परम गुरु पति के मस्तक पर पैर रखकर बैठती है? कोई भी स्त्री पति और पिता की बात अनसुनी करके स्वेच्छा से कार्य करती है? मैंने तो यह पाप किया ही है। भगीरथ की स्तुति से प्रसन्न होकर पति और पिता की बात काट दी है। इस पाप का फल और कौन भोगेगा ?

"तो क्या तुम करवट भी नहीं ले सकती हो ?"

"यदि करवट ले सकती होती तो क्या यह कलकत्ता नगर आज तक बना रहता? इसे मैं हड़प न गई होती अब तक? पिता जी, अँगरेज़ों के अत्याचार मैं कहाँ तक गिनाऊँ? मेरा जल तक बेंच-बेंचकर ये लोग पैसा वसूल करते हैं।

ब्रह्मा ने गङ्गा को बहुत आश्वासन दिया। अन्त में स्नान तथा सन्ध्योपासन आदि से निवृत्त होकर सब लोग स्थान पर गये। भोजन और विश्राम के बाद वे लोग फिर भ्रमण के लिए निकले। इस बार लालदीघी के पास से होकर बैंटिक स्ट्रीट देखते-देखते वे टीपू सुलतान की मसजिद के पास पहुँचे। वरुण ने ब्रह्मा आदि को टीपू का हाल बतलाया। उसी सिलसिले में लार्ड कार्नवालिस का भी प्रसंग छिड़ गया। बाद को बैंटिक स्ट्रीट की दूकानें देखते-देखते देवगण क़तार की क़तार सजी हुई जूतों की दूकानों के सामने पहुँचे। देवराज ने वहाँ पर अपने पक्षिराज घोड़े पर सवारी करने के लिए एक जोड़ा राइडिंग बूट ख़रीदा। उपशनि को भी उन्होंने एक जोड़ा जूता पहना दिया। वरुण ने कहा कि यहाँ के जूतेवाले ग्राहक देखकर मोल-भाव करते हैं और यदि बेवक़ूफ़ ग्राहक मिल गया तो उससे चौगुना दाम लिये बिना नहीं रहते।

देवगण घूमते-घूमते लालबाज़ार के पुलिस-स्टेशन के पास पहुँचे। वे लोग उसके भव्य भवन की ओर चकित-भाव से ताक ही रहे थे, इतने में उपशनि वहीं नाली के पास बैठकर पेशाब करने लगा। पेशाब

करके वह जैसे ही उठा, वैसे ही दो ओर से दो कानेस्टेबिल दौड़ पड़े और वे उसे पकड़कर ले चले। उपशनि के भय से विह्वल होकर पुकारने पर देवगण का ध्यान उसकी ओर आकर्षित हुआ। कानेस्टेबिलों के पास पहुँचकर उन्होंने उनसे बहुत-कुछ अनुरोध किया, वे पान-पत्ता के लिए भी उन्हें कुछ देने लगे, परन्तु कानेस्टेबिल लोग किसी प्रकार भी उसे छोड़ने पर सहमत न हुए। तब वरुण ने कहा--तुम घबराओ मत उपशनि, जहाँ ये लोग ले जायँ, वहाँ चले जाओ। पीछे-पीछे हम लोग भी आ रहे हैं।

उपशनि के मुक़दमे की पैरवी के लिए देवगण को लालबाज़ार की पुलिस-अदालत में जाना पड़ा। अदालत में वकीलों और मुवक्किलों की ख़ासी भीड़ थी। अदालत के सामने पेश करने के लिए कितने ही लोग बन्दी अवस्था में लाये गये थे, वे दीन-भाव से एक-एक क्षण वर्ष के समान व्यतीत कर रहे थे।

कई मुक़दमों के बाद उपशनि अदालत के सामने पेश किया गया। हाकिम दयालु थे। उन्होंने कानेस्टेबिलों को बहुत डाँटा। उन्होंने कहा--कलकत्ते में ऐसे कितने अपराधी पड़े हुए हैं, जो बहुतों का सर्वनाश कर रहे हैं। परन्तु उनका तुम कुछ नहीं कर पाते हो। एक ज़रा-से लड़के को पकड़कर तुम अपनी बहादुरी दिखलाने आये हो? अन्त में दो आना जुर्माना करके उन्होंने उसे छोड़ दिया। जुर्माना देकर देवगण उसे लेकर बाहर आये। इतने में देवराज ने देखा तो उनकी घड़ी और चेन ग़ायब थी। चकित होकर उन्होंने कहा--इस तरह की चोरी होती है लालबाज़ार पुलिस की अदालत में! धन्यवाद है इन चोरों के हाथ की सफ़ाई और साहस को। परन्तु इस दिशा में कौशल प्राप्त करने के लिए उन्होंने जिस शक्ति का उपयोग किया है, वही शक्ति यदि वे कोई उपयोगी कार्य सीखने में लगाते तो देश का बड़ा उपकार होता।

राइटर्स बिल्डिंग, सेक्रेटेरियट तथा टर्नर-मारिसन कम्पनी का

आफ़िस आदि देखते तथा वरुण से उनके सम्बन्ध की आवश्यक जानकारी प्राप्त करते हुए देवगण पर्मिट आफ़िस में पहुँचे। वरुण ने बतलाया कि यही आफ़िस एक प्रकार से कलकत्ते के सारे व्यापार का द्वार है, क्योंकि इसी आफ़िस के द्वारा यहाँ का माल बाहर भेजा जाता है और बाहर का माल यहाँ लाया जाता है। इधर इन लोगों में ये बातें हो ही रही थीं कि दलालों के एक बड़े दल ने आकर उन्हें घेर लिया और तरह-तरह के प्रश्नों की झड़ी लगाने लगा। ब्रह्मा ने बड़ी कठिनाई से यह समझाकर कि हम व्यापारी या महाजन नहीं हैं, उनसे पिंड छुड़ाया।

देवगण नया चीनाबाजार, पुराना चीनाबाजार आदि कितने ही स्थानों को देखते हुए स्थान की ओर लौटे जा रहे थे, इतने में एक स्थान पर खड़ा हुआ एक व्यक्ति पानी के कल को बार-बार ऐंठ रहा था। पितामह ने देखा तो वे यम थे। यम ने भी दौड़कर पितामह को प्रणाम किया। साधारण कुशल-प्रश्न के बाद यम ने बतलाया कि हाली शहर, काँचड़ापाड़ा, मदनपुर, चाकदा आदि स्थानों से होकर आजकल मैं कलकत्ता आया हूँ। कलकत्ता में मेरा मन जम गया है अवश्य, परन्तु रह न सकूँगा। यही पानी का कल ख़राब कर रहा हूँ मैं। अच्छा, आप लोग ठहरे कहाँ हैं ?

नारायण ने कहा--बड़ा बाजार में। चलो न हमारे स्थान पर। उनकी यह बात समाप्त भी न हो पाई कि ब्रह्मा बोल उठे। उन्होंने कहा--नहीं भाई, वहाँ चलने का काम नहीं है। वहाँ गृहस्थों के घर हैं। उन बेचारों के छोटे-छोटे बच्चे हैं। उन पर यदि कहीं तुम्हारी दृष्टि पड़ गई तो मामला गड़बड़ होगा।

यम ने कहा--सबके ऊपर तो मेरी दृष्टि लगती नहीं। जिनके तीन-तीन, चार-चार लड़के होते हैं, उनके घर की ओर मैं दृष्टिपात नहीं करता। मेरी दृष्टि जाती है उन भाग्यहीनों के घर की ओर जो केवल एक लड़के का मुँह ताककर गृहस्थी के सुख का अनुभव करते रहते हैं।

ब्रह्मा ने कहा—चुप रहो यम, तुम बड़े पापी हो। तुम्हारे कारण मुझे कितनी बातें सुननी पड़ती हैं। उपद्रव तुम करते फिरते हो, लोग दोषी मुझे ठहराते हैं। तुम्हारा तो मुँह देखने से भी पाप होता है।

यम ने अपने को निरपराध प्रमाणित करने के लिए बहुत-सी युक्तियाँ उपस्थित कीं। अन्त में उन्होंने कहा—इस समय आप लोग आज्ञा दीजिए, जरा एक बार मुझे अलीपुर जेल में जाना है। भाई, वहाँ क़ैदियों के खाने-पीने का ऐसा प्रबन्ध है, देखकर मूर्च्छा आती है। इसलिए मैं दिन में जाने का साहस नहीं कर सका।

यम के बिदा होने पर देवगण अपने स्थान पर गये। वहाँ रात्रि व्यतीत करने के बाद सबेरा होते ही ब्रह्मा फिर गङ्गा-स्नान के निमित्त चले। नारायण आदि को स्वभावतः उनका अनुसरण करना पड़ा। इस बार वे लोग बीरु मलिक के घाट पर गये। आज भी गङ्गा जी ने विधाता के सामने अपनी दुःख-गाथा छेड़ दी। उन्होंने बड़ी अधीरता प्रकट की। विधाता ने बड़ी कठिनाई से उन्हें शान्त किया। अन्त में स्नान-सन्ध्या-तर्पण आदि से निवृत्त होकर वे लोग स्थान की ओर लौटने जा रहे थे, इतने में उपशनि चिल्ला उठा—मेरा रैपर कौन ले गया? मेरा रैपर कौन ले गया?

वरुण ने कुछ झुँझलाहट के साथ कहा—अच्छा हुआ। तुमसे मैं पचास बार कह चुका कि यहाँ घाट पर बहुत-से चोर रहते हैं, परन्तु तुम जरा भी ध्यान नहीं देते। चलो, अब गया तो गया, दुखी होने से मिलने को तो है नहीं।

उपशनि अड़ गया। उसने कहा—आप लोग चलिए, मैं रैपर का पता लगाकर ही लौटूँगा। घाट पर चिल्ला-चिल्लाकर वह कहने लगा—सावधान, चोरों से सावधान रहो, यहाँ घाट पर बड़ी चोरी होती है। उसे इस प्रकार चिल्ला-चिल्लाकर स्नानार्थियों को सावधान करते देखकर चोर घबरा उठे। उन्होंने कहा—यह तो सबको सावधान करके हमारा मामला ही बिगाड़ना चाहता है। अन्त में एक आदमी

ने एकान्त में बुलाकर उसके ऐसा करने का कारण पूछा। बाद को वह उसे एक एकान्त स्थान में ले गया और चुराकर लाई गई चीज़ों में से निकालकर उसका रैपर उसके हवाले किया। उपशनि भी ख़ुशी-ख़ुशी स्थान पर लौट आया।

भोजन और विश्राम से निवृत्त होकर देवगण फिर भ्रमण के लिए निकले। इस बार वे लोग वहाँ के गवर्नमेंट हाउस की ओर गये। संयोग से वहाँ के एक दीवान से उनकी मुलाक़ात हुई। दीवान संयुक्त-प्रान्त का एक ब्राह्मण था और देवगण की ब्राह्मण की-सी वेश-भूषा से बहुत प्रभावित हुआ। इससे उसने बड़े प्रेम से इन्हें सारा गवर्नमेंट-हाउस दिखला दिया। इस तरह का सुसज्जित भवन देखकर इन्द्र चकित हो उठे। उन्हें लाट साहब के जीवन से ईर्ष्या होने लगी।

गवर्नमेंट हाउस देखने के बाद देवगण कलकत्ता की कलक्टरी कचहरी देखने गये, वहाँ से वे पोस्ट आफ़िस गये। बाद को एक गाड़ी पर सवार होकर बहूबाज़ार से होते हुए वे कालेज स्ट्रीट पर आये। वहाँ संस्कृत-कालेज, हिन्दू-कालेज, प्रेसिडेंसी कालेज तथा विश्वविद्यालय आदि देखने के बाद वे लोग मेडिकल कालेज में पहुँचे। ब्रह्मा आदि को साथ में लिये हुए वरुण जैसे ही भीतर पहुँचे, एक ओर यम भी विराज-मान थे। देखते ही ब्रह्मा की ओर बढ़कर उन्होंने प्रणाम किया। उन्होंने कहा——यह मेरा एक मुख्य मालगुदाम है। यहाँ से ढेर का ढेर माल हमारे यहाँ पहुँचता रहता है।

वरुण ब्रह्मा आदि को मेडिकल कालेज के विभिन्न विभागों में घुमाने लगे। परन्तु वहाँ कितने ही रोगियों को असह्य यन्त्रणा के मारे छटपटाते हुए देखकर वे अधीर हो उठे। विशेषतः ब्रह्मा तो आपरेशन के कमरे में एक क्षण भी न रुक सके। उन्होंने कहा——भाई, चलो यहाँ से। यहाँ का बीभत्स-काण्ड मुझसे तो नहीं देखा जाता। अन्त में वहाँ से चलकर घूमते-घूमते वे लोग स्थान पर आये।

दूसरे दिन ब्रह्मा की तबीअत कुछ ख़राब थी। इससे साँझ को चार बजे से पहले देवगण घूमने के लिए नहीं निकले। आज वे मिर्जापुर स्ट्रीट से चलकर अलबर्ट कालेज, रिपन कालेज, चाँपातला आदि होते हुए शियालदह स्टेशन पर पहुँचे। वरुण ने देवगण को बतलाया कि कलकत्ता के उस ओर जैसे हावड़ा स्टेशन है, वैसे ही इस ओर शियालदह स्टेशन है। यहाँ रेलवे के कई महत्त्वपूर्ण आफ़िस हैं। ईस्टर्न बंगाल रेलवे यहीं से आरम्भ हुई है और वह पद्मा नदी के तट पर गोयालन्द नामक स्थान तक गई हुई है।

शियालदह स्टेशन से चलकर देवगण चौबीस परगना की मुंसिफ़ी अदालत, कैनिंग बाजार आदि से होते हुए चितपुर रोड के दक्षिणी अंश के एक बाजार में पहुँचे। वरुण ने कहा—टिरेटा नामक एक अँगरेज का लगवाया हुआ है यह बाजार। इसी लिए लोग इसे टिरेटा बाजार कहते हैं। आजकल यह बाजार वर्द्धमान के महाराज के अधिकार में है। विभिन्न प्रकार की खाद्य सामग्रियों के अतिरिक्त पक्षियों की भी इस बाजार में अच्छी बिक्री होती है।

कुछ दूर आगे बढ़ने के बाद विधाता एक गाड़ी करके उपशनि के साथ स्थान पर चले गये। इधर नारायण, देवराज तथा वरुण मछुआ बाजार आदि कई स्थानों को घूम-फिरकर देखने के बाद बड़ी रात को पहुँचे।

दूसरे दिन भी विधाता की तबीअत कुछ वैसी अच्छी नहीं मालूम पड़ रही थी। उन्होंने कहा—वरुण, मृत्युलोक में भ्रमण करते-करते मेरे शरीर में पाप समा गया है। यही कारण है कि मेरी तबीअत खराब हो गई है। इससे अब यहाँ से यथासम्भव शीघ्र ही स्वर्ग के लिए प्रस्थान करना चाहिए। अस्तु, स्नान-भोजन तथा विश्राम से निवृत्त होकर वे लोग फिर घूमने के लिए निकले। आज भी वे विलम्ब से ही निकले थे और आज ही उन्हें कलकत्ता का भ्रमण समाप्त भी करना था। इससे उन्होंने केवल निमतलाघाट और कालीघाट देखने का निश्चय किया।

निमतलाघाट पर यह देखकर कि पुरुषों और स्त्रियों के स्नान के लिए पृथक्-पृथक् व्यवस्था की गई है, देवगण बहुत प्रसन्न हुए। किन्तु बाद को जैसे ही उन्होंने देखा कि जनाने और मरदाने घाट के बीच में नाली से होकर नगर का गन्दा पानी गङ्गा जी में आ रहा है, वे लोग बहुत दुःखी हुए ।

इसमें सन्देह नहीं कि ब्रह्मा को केवल गङ्गा को देखने की लालसा से कलकत्ता तक आने का उत्साह हुआ था। परन्तु इतनी दूर जब वे आगये थे तब उतावली के मारे कालीघाट जैसा प्रसिद्ध स्थान देखे बिना वे जा नहीं सकते थे। उस स्थान की चहल-पहल देखते हुए वे लोग मन्दिर के पास पहुँचे। परन्तु मन्दिर में प्रवेश करना कोई साधारण बात तो थी नहीं। एक तो भीड़ के मारे मन्दिर में तिल भर स्थान मिलना सम्भव नहीं हो रहा था, दूसरे टैक्स दिये बना पंडा लोग भीतर की ओर किसी प्रकार पैर ही नहीं बढ़ाने देना चाहते थे। द्वार पर आठ-आठ दस-दस संड-मुसंड आदमी यमदूत के समान डटे हुए थे। जो आदमी चुपके से पैसा निकालकर दे देता, उसे भीतर जाने की आज्ञा मिलती। तब जाकर कहीं काली माई के दर्शन की आशा होती।

पंडों का पैसा वसूल करने का ढंग देखकर ब्रह्मा बहुत दुःखी हुए। उन्होंने मन ही मन कहा---कलिकाल में सभी मामलों में दूकानदारी है। इससे अब तो पृथ्वी का ध्वंस हो जाना ही अच्छा है । अहा, दरिद्र आदमी के लिए इतनी भी सुविधा नहीं रह गई है कि वह इच्छानुसार काली माई का दर्शन कर सके? परन्तु इससे क्या, मन में तो अपने वह दर्शन कर ही सकता है और इस प्रकार पैसा देकर दर्शन करने की अपेक्षा वह अधिक पुण्य का अधिकारी हो सकता है।

पैसे देकर मन्दिर में प्रवेश करने पर देवगण ने देखा तो काली जी रो रही थीं। ब्रह्मा आदि के सामने सिसक-सिसक कर उन्होंने अपनी दुःख-गाथा आरम्भ की। उन्हें सबसे अधिक क्लेश था पंडों के कारण। वे कहने लगीं कि इन पंडों का वंश इतना बढ़ गया है कि किसी प्रकार इनका

पेट ही नहीं भरने में आता। खटमल की तरह वे सब मिलकर मेरा रक्त चूस रहे हैं। हिस्सा-बाँट के लिए वे बराबर आपस में लड़ते ही झगड़ते रहते हैं। चीजें भी हमारे यहाँ चढ़ने के लिए जो आती हैं, उनकी भी कम दुर्दशा नहीं होती। उन्हें बार-बार दूकानदार के यहाँ से मेरे यहाँ और मेरे यहाँ से दूकानदार के यहाँ नाचते रहना पड़ता है। कितने चोर-डाकू और ठग मेरे मन्दिर में चक्कर लगाते हुए दूसरों का सर्वनाश करने का प्रयत्न करते रहते हैं।

काली जी को सान्त्वना देकर देवगण बिदा हुए।

स्वर्ग

कलकत्ता से चलकर देवगण सीधे दार्जिलिंग पहुँचे। संस्कृत-शिक्षा के मुख्य केन्द्र नवद्वीप में भी दो-एक दिन व्यतीत करने की उनकी बड़ी इच्छा थी, परन्तु मृत्युलोक में अब उनका मन किसी प्रकार भी नहीं लग पाता था। इसलिए वे और कहीं रुक नहीं सके। दार्जिलिंग उन सबको एक छोटी गाड़ी पर सवार होकर जाना पड़ा था। गाड़ी सर्प की तरह नाचते-नाचते क्रमशः ऊपर चढ़ रही थी। नीचे कितनी कन्दरायें, कितने वन दिखाई पड़ रहे थे। इस अवसर पर विधाता अँगरेजों की बुद्धि की प्रशंसा किये बिना नहीं रह सके। देवराज को सावधान करते हुए उन्होंने परामर्श दिया कि गढ़ अपना तुम यथासम्भव शीघ्र ही ठीक करवा लो, नहीं तो किसी दिन अँगरेज लोग स्वर्ग पर भी अधिकार किये बिना न रहेंगे।

दार्जिलिंग जैसे-जैसे समीप आता जा रहा था, वैसे ही वैसे देवगण को ऐसा जान पड़ता, मानो रेलगाड़ी आकाश पर छाये हुए मेघों को चीरती हुई चल रही है। नारायण ने कहा—आहा! कैसा सुन्दर दृश्य है यह।

दार्जिलिंग पहुँचने पर प्रसन्न होकर ब्रह्मा ने कहा—कितना

सुन्दर नगर है यह। यहाँ एक मकान नीचे है, एक ऊपर है, तो एक उससे भी ऊपर है। इस तरह ऊपर-नीचे बने होने के कारण ये मकान बहुत सुन्दर मालूम पड़ते हैं।

वरुण ने कहा--यह नगर पहाड़ पर बसा हुआ है। यहाँ कहीं समतल भूमि तो है नहीं कि मकान एक सीध में बनाये जा सकें। जिसे जहाँ भी स्थान मिल सका है, वहीं उसने अपना मकान बनवा लिया है। रात्रि में यह नगर बहुत ही सुन्दर मालूम पड़ता है। घर-घर में जलती हुई बत्तियाँ इतनी शोभायमान मालूम पड़ती हैं, मानो पर्वत पर फूल खिले हुए हैं और वे प्रकाश के रूप में चमक रहे हैं।

गाड़ी से उतरने पर यथासमय स्नान-भोजन से निवृत्त होकर देवगण नगर में भ्रमण के लिए निकले। इतने में सामने ही उन्हें एक ज्योतिर्मय रथ ऊपर से उतरता हुआ दिखाई पड़ा। देव-गण विस्मित भाव से उसकी ओर ताक ही रहे थे, इतने में सामने पहुँचकर मातलि ने कहा--महाराज, आप लोगों की अनुपस्थिति के कारण स्वर्ग में बड़ा उपद्रव मचा हुआ है, इसलिए युवराज जयन्त ने मुझे भेजा है। कृपया शीघ्र ही रथ पर सवार हो जाइए।

मातलि के अनुरोध के अनुसार रथ पर सवार होकर स्वर्ग के देवता स्वर्ग में पहुँच गये। इसलिए वहाँ धूमधाम का होना स्वाभाविक था। घर-घर में शङ्ख-ध्वनि हो रही थी। सड़कों पर रोशनी करने के लिए खम्भे गड़ रहे थे। मेनका, उर्व्वशी आदि अप्सरायें अपना-अपना दल लेकर कोई राजप्रासाद की ओर और कोई ठाकुरद्वारे की ओर चली जा रही थीं। ब्राह्मण लोग भी आशीर्वाद देने के लिए घर से निकल पड़े थे।

इधर यम के पास इस आशय का परवाना पहुँच गया कि इस घटना के उपलक्ष्य में एक लाख बयासी हज़ार क़ैदी जेलख़ाने से छोड़ दिये जायँ। देवियाँ भी अपने-अपने स्वामी को पाकर प्रसन्न हो उठीं।

पाँच-सात दिन के बाद अमरावती में एक विराट् सभा का आयोजन होने लगा। मुख्य-मुख्य स्थानों पर पोस्टर चिपकाये गये। घर-घर

नोटिस भी भेजी गई। निर्द्धारित दिवसपर आ-आकर देवगण उपस्थित होने लगे। भैंसे पर सवार होकर यम आये, हंस पर पद्मयोनि, गरुड़ पर नारायण, वृषभ पर पंचानन तथा पुष्पक रथ पर देवराज। चूहों की टमटम पर सवार होकर गणेश जी तथा मयूरों की बग्घी पर देवताओं के सेनानायक कार्त्तिक भी आ पहुँचे। सूर्य्य, चन्द्रमा आदि अन्य समस्त देवगण भी अपने-अपने वाहनों पर सवार होकर आ पहुँचे।

देवियाँ भी सभा-भवन में उपस्थित हुईं। सिंह पर सवार होकर भगवती पहुँचीं, उलूक पर सवार होकर लक्ष्मी, डोम के कन्धे पर शीतला तथा बिल्ली की पीठ पर बैठकर षष्ठी देवी पहुँचीं। हाथ में वीणा लियेहुए वीणापाणि भी आकर सभा-भवन को सुशोभित करने लगीं। पाताल-लोक से आ-आकर नागगण भी सभा में उपस्थित होने लगे। ज्वर, हैज़ा, कारबंकल, बहुमूत्र तथा शीतला आदि रोग, अतिवृष्टि, अनावृष्टि, भूकम्प तथा तूफ़ान आदि भी सभा में आ पहुँचे। देशवासियों पर लगाये जानेवाले हर प्रकार के कर देवराज के विशेष निमंत्रण पर आकर उपस्थित हुए। काम, क्रोध, लोभ, मोह तथा विद्या-बुद्धि को भी उपस्थित होने के लिए आदेश किया गया था। सभा की कार्यवाही पर ध्यान रखने तथा समुचित रूप से उसका संचालन करने की व्यवस्था करने का भार दिया गया शनि पर।

कार्यवाही आरम्भ होने पर सर्व-सम्मति से पितामह सभापति निर्वाचित किये गये। करतल-ध्वनि के साथ उनके वह आसन ग्रहण करने के बाद देवराज भाषण करने के लिए खड़े हुए। उन्होंने कहा—हे अमरवृन्द, अभी हम लोग मृत्युलोक का भ्रमण करके आये हैं। वहाँ की अवस्था देखकर हमें इतनी ग्लानि हुई कि इस पृथिवी का जितनी शीघ्रता से ध्वंस किया जाय, उतना ही अच्छा है। मृत्युलोक के ब्राह्मणों में ब्राह्मणत्व अब रह ही नहीं गया है। प्राचीन काल में ब्राह्मण

लोग सर्वत्र आदर-सहित पूजा प्राप्त किया करते थे। आचार-भ्रष्ट, जातिच्युत तथा पतित व्यक्ति उनकी व्यवस्था के अनुसार प्रायश्चित्त करके वे फिर समाज में अपना पूर्व स्थान प्राप्त करने के अधिकारी हुआ करते थे। परन्तु आजकल ब्राह्मण लोग स्वयं पतित हो गये हैं। उनमें वह शक्ति नहीं रह गई है कि अब वे दूसरों के प्रायश्चित्त का विधान कर सकें। अब तो वे उदरपूर्ति के लिए नीच से नीच सेवावृत्ति को अङ्गीकार करने में ज़रा-भी सङ्कोच का अनुभव नहीं करते। सुधान्य-कुधान्य का ध्यान उन्हें नहीं है।

देवगण, ब्राह्मणों के ही समान अन्यान्य वर्णों के लोग भी कर्मच्युत हो गये हैं। शूद्रों की जितनी जातियाँ हैं, उन सबने अपने जातिगत व्यवसाय का परित्याग कर दिया है। लोहार-कुम्हार आदि क्रमशः लोहे और मिट्टी का काम छोड़कर बाबूगिरी के चक्कर में पड़े हुए हैं। अपने समवयस्क ब्राह्मणों को प्रणाम न करके वे लोग अब उनसे हाथ मिलाकर गुडमार्निंग करते हैं। खाने-पीने में अब किसी को जाति-भेद का वैसा ध्यान रहा नहीं। कितने कुलीन से कुलीन ब्राह्मण आजकल निस्सङ्कोच होकर शूद्रों के साथ खाते-पीते हैं। स्त्रियाँ भी उत्तरोत्तर सदाचार की मर्य्यादा का उल्लंघन करती जा रही हैं। स्त्रियों तथा पुरुषों की वेश-भूषा में भी आजकल आकाश-पाताल का अन्तर हो गया है। अकर्मण्यता तो स्त्री-समाज में इतनी अधिक आगई है कि आजकल एक स्त्री जितनी सन्तानें प्रसव करती है, उसे उतनी नौकरानियों की आवश्यकता पड़ती है, क्योंकि वह स्वयं बच्चों का पालन-पोषण नहीं कर पाती।

गुरुजनों के प्रति युवक-युवतियों की अवहेलना की भावना का उल्लेख करते हुए देवराज ने कहा––आजकल के युवक स्त्री के दास होते हैं और उसे प्रसन्न कर सकने में ही अपने जीवन की सार्थकता समझते हैं। वे स्वयं पेट भर भोजन न करेंगे, माता-पिता को भी भोजन-वस्त्र के लिए क्लेश देंगे, किन्तु स्त्री की मनस्तुष्टि के लिए आभूषण

अवश्य ख़रीदेंगे। युवतियाँ भी पति तथा परिवार के अन्य लोगों की सुविधा या असुविधा की ओर ध्यान न देकर प्रतिदिन नई-नई आवश्यकताओं की सृष्टि करती रहती हैं और उनकी इच्छा के अनुसार यदि सब वस्तुएँ न मिलीं तो अनशन कर बैठती हैं। राजा भी धर्म-हीन हो गये हैं। प्रजा के सुख-दुःख की ओर ध्यान न देकर वे लोग रात-दिन अपना कोष भरने के ही फेर में पड़े हैं। पहले की तरह परम पूज्य माता-पिता को अब उच्च स्थान में न रखकर नीचे के अस्वास्थ्यकर कमरों में रक्खा जाता है, ऊपर के कमरों में निवास होता है पति-पत्नी का। धनवान् आदमियों के यहाँ उत्सव आदि में ब्राह्मणों को भोजन न कराकर साहबों को भोजन कराया जाता है। देवी-देवताओं की पूजा और तीर्थ-दर्शन अब केवल मनोविनोद का साधन भर रह गया है, लोगों को अब इन कार्य्यों में श्रद्धा नहीं है। वास्तव में मनुष्य में अब सत्प्रवृत्ति रही नहीं, कुप्रवृत्तियों से हृदय उसका परिपूर्ण हो उठा है। इसलिए मैं पृथ्वी का ध्वंस कर डालना चाहता हूँ अब।

"साधु, साधु" कहकर चारों ओर सभासद् करतल-ध्वनि करने लगे। अन्त में सभापति के आसन से भाषण करते हुए पितामह ने कहा---पृथ्वी का एक साथ ध्वंस न करके मैं क्रम से उसका ध्वंस करना चाहता हूँ। इसलिए उपस्थित महानुभावों में से इस विषय में कौन क्या कार्य कर सकेगा, यह जान लेना आवश्यक है।

पितामह की यह बात सुनकर सबसे पहले संक्रामक ज्वर उठकर खड़ा हुआ। उसने कहा---मैं अकेला ही सारे बंगाल का अन्त करके रहूँगा। बाद को और-और रोगों ने अपनी-अपनी करामात की कहानी कहनी आरम्भ की। तब अतिवृष्टि का पाला आया। उसने कहा---अनवरत वर्षा करते-करते मैं सारा देश डुबा दूँगा। इससे खेत में जो कुछ बोया होगा, वह सड़ जायगा और लोग अन्न के बिना मर जायँगे। अनावृष्टि ने कहा---तुम्हारे आक्रमण से जो कुछ बच रहेगा, उसे मैं नष्ट कर डालूँगी। भूकम्प ने कहा---पाँच मिनट के धक्के में ही मैं

बड़ी बड़ी कोठियों को ढहा दूँगा। मनुष्यों, पशु-पक्षियों तथा पेड़-पौधों का चिह्न तक न रहने दूँगा। सरकारी करों ने कहा--इन सबके मारे जो लोग बच जायँगे, वे हम लोगों की बदौलत पेट भर अन्न न पा सकेंगे।

काम ने कहा--अब मैं इतना जोर मारूँगा कि वासना को चरितार्थ करते समय युवक-युवतियों का पारस्परिक सम्बन्धों की ओर ध्यान तक न जायगा। क्रोध ने कहा--मैं माता-पिता, पत्नी तथा सन्तान तक का वध करवा कर रहूँगा। विद्या ने इस बात की जिम्मेदारी ली कि आज से मैं अविद्या के ही रूप में अपने आपको प्रकट करूँगी। बुद्धि ने कहा--अब मैं दुर्बुद्धि बनूँगी और लक्ष्मी ने कहा--आज से मैं दरिद्रा के रूप में भारत में विचरण करूँगी।

इस प्रकार सभी ने किसी न किसी रूप में भारत को हानि पहुँचाने की प्रतिज्ञा की। शिव ने भी अपना मन्तव्य प्रकट किया कि अब मैं नये-नये रोगों की सृष्टि करके मानव-जाति का विनाश करूँगा, जिससे वैद्य-डाक्टर उन्हें किसी प्रकार भी न बचा पावें। इससे प्रसन्न होकर पितामह ने कहा--बहुत ठीक, अब रेलगाड़ियों और स्टीमरों के द्वारा लोगों को यमलोक में भेजने की व्यवस्था करनी होगी। यम ने कहा--तब तो मुझे नरक ख़ाली कर रखना चाहिए। परन्तु चित्रगुप्त इस योजना से घबरा उठे। उन्होंने कहा--असिस्टेंटों के बिना अब हमारा काम न चल सकेगा। इतना हिसाब मैं अकेला न रख सकूँगा। अन्त में नारायण ने सभापति को धन्यवाद दिया। इस कार्य में इन्द्र ने भी उन्हें योगदान किया। तत्पश्चात् हरि-हरि की तुमुल ध्वनि के साथ सभा विसर्जित हुई।

Printed and Published by
K. Mittra, at The Indian Press, Ltd.,
Allahabad.

अब तक प्रकाशित पुस्तकें

१ क्रान्तिकारी
२ रूसी कहानी संग्रह
३ समरक़ंद की सुन्दरी
४ पृथ्वी का इतिहास
५ चक्रभेद
६ दैनिक जीवन और मनोविज्ञान
७ मेरा संघर्ष
८ आधुनिक जापान
९ सूरसंदर्भ
१० रामकृष्णचरितामृत
११ महान् अपराधी
१२ मृत्युकिरण
१३ अभिसारिका
१४ मोपाँसा की कहानियाँ
१५ ताया
१६ दुर्गेशनन्दिनी
१७ हिन्दी के निर्माता
१८ डिक्टेटर
१९ बुभुक्षा
२० नरक
२१ निरपराधी
२२ छिपा महल
२३ वंचिता
२४ हंसराज की डायरी
२५ हिन्दी के वैष्णव कवि
२६ समस्या का हल
२७ नया क़दम
२८ रहस्य-भेद
२९ मेरे अन्त समय के विचार
३० प्राचीन तिब्बत
३१ आना केरेनिना
३२ मृत्युलोक की झाँकी
३३ मिस्टर चर्चिल
३४ जीवन-ज्योति

मिलने का पता—इंडियन प्रेस, लिमिटेड, इलाहाबाद